प्रकाशकीय वक्तव्य

मैं श्री हीरकजी की सुन्दर काव्य-कृति को हिन्दी-काव्य प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत कर आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। लेखक को आशीर्वाद देने वाले आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयीजी का तथा इस महाकाव्य में दिये गये भ० महावीर के चित्र का ब्लाक भेजने वाले श्री लक्ष्मीचंद्रजी जैन एम. ए. सम्पादक, लोकोदय ग्रन्थमाला, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी और पण्डित कमलकुमारजी शास्त्री, साहू जैन निलय, कलकत्ता का आभार मानता हूँ।

धन्नालाल पांड़े

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय सागर के आशीर्वादात्मक उद्गार

हीरकजी का "जय-सन्मति" काव्य मैं पढ़ गया हूँ। पवित्र रमणीक चरित्र को आठ छोटे-छोटे सर्गों में अंकित कर बड़ी सुन्दर भावात्मक भूमिका दी गई है। जैन लोकगाथायें अपनी आदर्शवादिता के लिए प्रसिद्ध ही हैं। हीरकजी ने वहीं से अपनी प्रेरणा लेकर चरित्र को उदात्त रेखायें दी हैं। वर्णनात्मक काव्य के अनुरूप "जय सन्मति" की भाषा में प्रांजलता और सरलता का गुण है। कहीं भी विवादी स्वर नहीं आ पाए हैं।

मैं इस सुन्दर काव्य-कृति का स्वागत करता हूँ।

दीपावली संवत् २०१६

३१-१०-५६

नन्ददुलारे बाजपेयी

-: समर्पण :-

इस धरती के,

भूत भविष्यत्-वर्तमान के,

ज्ञात और अज्ञात नाम के,

सत्य-अहिंसा-विश्वशांति के,

साधक-संत-कलाकारों को-

सादर सविनय काव्य समर्पित।

"हीरक"

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	तीर्थकर	तीर्थंकर
२	१९	बड़े	बड़े
२	२०	मडली	मंडली
३	३	रजन	रंजन
६	३	नाचते	नचते
१०	२	दैत्य	दैन्य
१०	१९	घणा	घृणा
१०	२२	।नज	निज
१०	२३	पचम	पंचम
११	२१	वर्मराज	धर्मराज
१२	१४	शी	शीघ्र
१३	५	बतलता है	बतलाता है
१७	८	सगीत	संगीत
१७	१५	कितगा	कितना
१७	१९	पर	पुर
१८	१३	निग्रथ	निर्ग्रंथ
२७	१८	माधुय	माधुर्य
३४	८	जसे	जैसे
३९	२	नर में पशु हो	नरपशु होमें
४६	१९	विभू	विभु
४६	२१	बिभु	विभु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	१८	महवीर	महावीर
४६	२	सुभ	सुम
४६	७	हनवन	ह्वन
५०	१०	घटते	छूटते
५४	१६	बहि	बनिह्
५५	४	बहिन्	बनिह्
५६	१४	उभगते	उमगते
६३	२	बध्द	वृद्ध
६४	१०	जान	ज्ञान

"जय सन्मति"

(महाकाव्य)

सर्ग-सूची

आदरणीय मिश्रीलालजी गंगवाल



भूमिका लेखक

भूमिका

जीवन ही साहित्य है और साहित्य ही जीवन है। साहित्य की विशाल परिधि में कालातीत विश्व-जीवन गर्भित होता है। समस्त सृष्टिचक्र साहित्य के लोक मे समुद्र की जलबिन्दु के समान है। भ० महावीर का जीवन भी परमोत्कृष्ट जीवन है। उनका जीवन विश्व के हितार्थ था अतएव सार्वजनीन था। उनने भारतीय दर्शन की प्राणभूत अहिंसा की साधना के द्वारा अपने जीवन को विश्व के समक्ष आदर्श अहिंसक के रूप में प्रस्तुत किया और अहिंसा के द्वारा अपने युग की समस्याओं का हल करने का प्रशस्य प्रयास भी किया, वे मानव होकर देव बने। सत्साहित्य का लक्ष्य भी मानव को देवत्व की प्राप्ति के लिए प्रेरित करना है। अतः भ० महावीर पर जितना साहित्य निर्माण हो कम है.।

"जय सन्मति" महाकाव्य को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसके रचयिता श्री हीरालाल पाँड़े "हीरक" हैं। आपकी एक कृति "बाहुबली" खंडकाव्य सन् १९४८ में प्रकाशित हो चुकी है। आप राजकीय हमीदिया कालेज, भोपाल में संस्कृत के प्राध्यापक हैं। इस इस काव्य का नामकरण राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के "सब को सन्मति दे भगवान" वाले प्रार्थना पद की ओर मेरा ध्यान सहसा खींच ले गया। यद्यपि भ० महावीर के सन्मति, अतिवीर, वीर, वर्धमान, और महावीर ये पांच नाम प्रसिध्द हैं। वर्तमान में सन्मति-सद्बुध्दि और सन्मति-भ० महावीर जैसे व्यक्तिओं की विश्व को आवश्यकता है। अहिंसा के द्वारा ही विश्व की अशांति एवं राष्ट्रों के संघर्ष को दूर किया जा सकता है। अहिंसा अमोघ अस्त्र है और वह स्व-पर-रक्षक है। राष्ट्रपिता ने अहिंसा के द्वारा देश का उद्धार कर

उसे राजनीति में भी उपादेय सिद्ध कर दिया है । नेहरूजी के "पंचशील" के सिध्दान्त भी अहिंसा से प्रभावित हैं ।

जय सन्मति" अति सुन्दर महाकाव्य है । इसमें काव्य के उपकरणों का यथावश्यक समावेश है । कथावस्तु ऐतिहासिक है और दिगम्बर एवं श्वेताम्बर आम्नाय में वर्णित भ० महावीर की जीवन सम्बन्धी घटनाओं का यथास्थान उपयोग किया गया है । जहां तहां आवश्यक कल्पनाओं से कथावस्तु को सुन्दरतम बनाया गया है । काव्य की भाषा अत्यन्त सरल और प्रवाहपूर्ण है । अलंकारों और कल्पनाओं का स्वाभाविक समावेश यत्रतत्र मिलता है । प्रकृति, प्रभात, चंद्रोदय, सूर्योदय एवं ऋतुओं आदि का वर्णन भी अच्छा हुआ है । छन्दों का चयन प्रवाह के अनुरूप है । शांतरस के इस काव्य में अन्य अविरोधी रसों को भी उचित स्थान मिला है । काव्य जिस विशाल दृष्टिकोण के साथ लिखा गया है उस दृष्टिकोण की उपासना विश्व में युगों तक होती रहेगी ।

काव्य के प्रारम्भ में भारतदेश के विषय में कवि की निम्न गर्वोक्ति बड़ी मार्मिक है–

धन्य देश यह भारत जिस में तीर्थंकर आते हैं ।
जिन से बने तीर्थ में जग के कल्मष धुल जाते हैं ।।

प्रथम सर्ग में आदर्श राजा सिध्दार्थ और रानी त्रिशला का मनोज्ञ वर्णन है । वे आदर्श पुरुष और नारी के रूप में अंकित हुए हैं । रानी त्रिशला के वर्णन में निम्न पंक्तियां विशेष महत्वपूर्ण हैं:–

जंगम छवि की दीपलता सी, श्रीफल से पूजित थी ।
अत: अलंकारों से उनकी, शुभकाया भूषित थी ।।
उनके अंग-अंग से सुन्दरता फूटी पड़ती थी ।
पग गिरते जिस पथ में उनके, भूरज रूप बदलती ।।

नयन-गमन का वचन-जाल का, भूषा का विनियंत्रण ।
जो देखे उसका शिर झुकता, दे मन को परितर्पण ।।
विदुषी भव्य विचारों वाली, गुन-गन-कल्पलता सी ।
सुभाषितों की अनुपम लक्ष्मी, भूमि-दिव्य-रंभासी ।।

द्वितीय सर्ग में तत्कालीन परिस्थितिओं के अंकन में कुछ कुछ आज के युग की दशा का आभास सा दिखाई देता है । रानी त्रिशला के स्वप्नों के फल–वर्णन के प्रकरण में "सुर-विमान" के दर्शन के फल का वर्णन करते हुए कवि कहता है:–

सुर-विमान का दर्शन जग को, स्वर्ग समान बना देगा ।
स्वयं स्वर्ग से आकर मानव, गति को उच्च बता देगा ।।
मानवता का मूल्य विश्व के, सारे कल्मष धोना है ।
परहित में अपने को खोकर, जगत-पार ही होना है ।।

रानी और दासियों के बीच कल्पना-प्रसूत वार्तालाप अतीव रोचक बन पड़ा है ।

तृतीय सर्ग में भ० महावीर की बाल्यावस्था के सौन्दर्य–वर्णन में कवि ने उनको वस्त्राभूषण–सुसज्जित होने पर भी निर्ग्रंथ ही चित्रित किया है:–

उज्ज्वल आभा में वसन मिले, निर्ग्रंथ सरीखे लगते थे ।
जिस ओर नेत्र उनके ढलते, आनंद-लोक–शत बसते थे ।।
रवि और शशी उनकी तुलना,–के आगे शीश झुकाते थे ।
सौन्दर्य-देवता के पूजक, लावण्य पार कब पाते थे ।।

बचपन में बच्चों के साथ खेलते हुए भ० महावीर सर्प देख भयभीत हुए साथियों से कहते हैं:–

बोले जिनेन्द्र ! तुम मेरे हो, तो कायरता क्यों दिखलाते ।
क्या वीर-पंथ के अनुयायी, हैं कायरता को अपनाते।।
तुम रखो आत्म-विश्वास प्रबल, पत्थर पर फूल उगा सकते ।
तुम रखो धैर्य उल्लास अटल, नवयुग को सहसा ला सकते।।
बोले जीवन में नाग नेक, वे हैं विचार के घोर शैल ।
उन को निर्विष कर बढ़ना है, तब कहीं कटेगा आत्म-मैल ।।

माँ बाप और बेटा के बीच की बातें, झूला का झूलना, महावीर का बहाना आदि कल्पना-प्रसूत रोचक वार्ता है। भ. महावीर के दर्शन से छिन्न-संशय मुनियों का यह कथन कितना अनूठा है-

तुम सन्मति हो तुम से सन्मति,- हों जीव विश्व को पार करें ।
मानव-समाज-मुख उज्ज्वल हो, युग युग के कल्मष क्षार करें ।।

चतुर्थ सर्ग में यौवनवसंत के वर्णन के साथसाथ भ० महावीर के रूप-सौन्दर्य का भी हृदयहारी वर्णन है । राजसी वैभव म वे रह रहे हैं फिर भी भोग-विलास के साधन उनसे स्वयं किनारा काट लेते हैः-

उनसे विलास-भोगों के, साधन ने बचना चाहा।
पापी के मन में भी तो, आता सुबोध मन चाहा ।।

भ० महावीर अपने प्रकोष्ठ में लगे चित्रों को देख जो सोचते हैं वह सब कवि-कल्पना-जन्म उत्कृष्ट तथ्य है । उनके साथी हिंसक साधु-मुनियों को छेड़ते हैं और उन्हें सत्य अहिंसा का हित-कर सच्चा मार्ग दिखाते हैं । अंत में कवि कहता है-

त्रिशला के प्यारे सुत में, यौवन प्रशान्त लहराता।
त्रय शल्य विश्व के हरता, मानव को शान्त बनाता ।।
उनकी यौवन रेखा से, जग का कण कण हो दीपित ।
श्रम लक्ष्य बने जीवन में उन्नति का जग कब सीमित ।।

इस प्रकार चतुर्थ सर्ग में भ० महावीर के यौवन सौन्दर्य भावों की उदात्तता, चित्त की विशालता और गंभीर जीवन दर्शन की झलक मिलती है ।

पंचम सर्ग में भ० महावीर उपवन में आकर जो गंभीर चिंतन जीवन और संसार विषयक करते हैं उसकी झलक है एवं वे विरक्त होते हुए दिखाई देते हैं । वे विवाह करने से इंकार करते हुए अपनी मां से भी कहते हैं:-

बस यही भावना मेरी, इस पर मुझको चलना है ।
दीपक की लौ सा मुझको, जीवन भर ही जलना है ।
मानव निज-भाग्य विधाता, वह सब कुछ कर सकता है ।
चाहे तो इस दुनियां में, नव स्वर्ग बसा सकता है ।।
पानी में आग लगा दे, नभ में उद्यान खिला दे ।
सूखी डाली हर पत्ती, जब चाहे जिसे जिला दे ।।
मानव ही देव बना है, तप त्याग साध में बलता ।
नर-वंश हुआ पावन है, वसुधा के हित में जलता ।।

छठे सर्ग में प्रजा, राजा सिद्धार्थ और राजपुत्र महावीर के बीच हुई बातों का वर्णन है जिस में प्रजा भी उनको विराग से रोकने में असमर्थ हुई है । विरक्त महावीर के परमोज्ज्वल तप और उज्जयिनी में हुए रुद्र-परीक्षण का सुन्दर अंकन है । सती अंजना की भक्ति और मुक्ति की कथा भी इसी में है ।

सप्तम सर्ग में सन्मति–महावीर और राम की तुलना भी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है:–

राम लड़े रावण से पाई, सीता जग की माई ।
सन्मति भी सच पा जावेंगे, मुक्ति रमा सुखदाई ।।

कर्म बड़े रावण से बैरी, बंधक बनकर बैठे ।
रूठ गये वे ऐसे जैसे, रूठ गये हों जैठे ॥
कर्म यहाँ दुनियां के रावण, राम आत्मा हितकर ।
अपना राम जगाता जो वह, कर्म काटता दुखकर ॥

इसी सर्ग में भगवान महावीर की केवल ज्ञान की प्राप्ति और उनकी स्तुति का श्लाघ्य वर्णन है ।

आठवें सर्ग में श्रमण संस्कृति के प्रतीक भगवान महावीर का विपुलाचल पर्वत पर आना, सम्राट् बिम्बसार का आना, भगवान का उपदेश होना इत्यादि का वर्णन है । भगवान महावीर के उपदेश में निम्न पंक्तियां विशेष महत्वपूर्ण हैं—

हो समाज की नीव अहिंसा जगहित कारी,
बने विश्व सुखधाम मित्रता की हो क्यारी ।
सभी तरह के युद्ध भौतिकी संहारक हैं,
विश्व शांति में हिंसा के ही रव बाधक हैं ॥
तब कल्याण करी भौतिक उन्नति होती है,
जब सरिता अध्यात्म्य हृदय का मल धोती है ।
उसकी लय ध्वनि व्याप रही है सारे जग में,
सुन कर पाओ परम सौख्य निष्कंटक मग में ॥

मै इस काव्य के निर्माता को उनकी सुन्दर रचना के लिए बधाई देता हूँ आशा है कि हिन्दी काव्य के प्रेमी इसे समुचित सन्मान देंगे ।

—मिश्रीलाल गंगवाल
वित्तमंत्री, मध्यप्रदेश
भोपाल

पर्यूषण पर्व
१०-६-५१

"जय सन्मति" के रचयिता



प्रा. हीरालाल पांडे "हीरक"

कवि की ओर से:--

"बाहुबलीं" खंड काव्य लिखने के पश्चात् सन् ४७ से ही मेरें मन में भगवान महावीर पर सुन्दर काव्य लिखने की भावना बनी रही क्योंकि उनके जीवन से संबद्ध कोई भी काव्य हिन्दी-साहित्य-रसिक समाज के समक्ष प्रस्तुत नहो हुआ था। सन् ५१ तक मेरे इस काव्य का आधे से अधिक भाग तैयार हो गया था। शेष की पूर्ति सन् ५३ तक हो सकी।

पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, बनारस के आदेशनुसार "जय सन्मति" महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग को जैन संदेश में प्रकाशनार्थ भेजा। उसे ४ मार्च ५४ के अंक में स्थान मिला। "जैन विश्व मिशन" की पत्रिका "अहिंसावाणी" के "स्वाधीनता विशेषांक तथा विश्वशांति अंक," अगस्त १९५८ में "जय सन्मति" का एक अंश सपादक जी ने "वीरवाणी" के नाम से प्रकाशित किया। अत: दोनों का आभारी हूं। सन् ४८-४९ से लेकर आज तक "वीर जयंती" पर अनेक जगह इस काव्य के अंशों का पाठ भी हुआ है।

जीवन के घात-प्रत्याघातों के कारण काव्य का प्रकाशन देरी से हो रहा है फिर भी साहित्य में इसका अपना स्थान होगा। पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री, "वर्णी दि जैन ग्रंथ माला, बनारस तथा पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, प्रधानाचार्य स्याद्वाद दि. जैन महाविद्यालय, भदैनी, बनारस दोनों ही इस काव्य को इच्छानुरुप पाकर अवश्य प्रसन्न होंगे।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि भगवान महावीर अहिंसा के परम पुजारी थे। उनका जीवन का लक्ष्य अहिंसात्मक मानव समाज की

स्थापना था । अहिंसा के द्वारा ही हम समाज एवं विश्व की समस्याएँ हलकर भारतीय संस्कृति, सभ्यता और दर्शन का संरक्षण तथा विश्व में शांति स्थापित कर सकते हैं । इसी लक्ष्य का काव्य में अनेक स्थलों पर उद्‌घाटन हुआ है ।

मेरी हार्दिक कामना है–

हो जांय जगत के बच्चे, ज्ञानी औ दिल के सच्चे ।
यौवन उन में लहराये, जगहित में बनें न कच्चे ।।
यह ज्योति प्रज्वलित फैले, जग में प्रकाश करने को ।
हो सत्य अहिंसा मानव, जग के कलमष धोने को ।।

चतुर्थ सर्ग पृष्ठ ३२.

मैं भूमिका लेखक श्रीमान् आदरणीय मिश्रीलाल जी गंगवाल, वित्तमंत्री मध्यप्रदेश, (जो स्वयं सुकवि हैं) का आभार मानता हूँ तथा प्रकाशक को भी धन्यवाद देता हूँ ।

– हीरालाल पाँडे "हीरक"

राजकीय हमीदिया कालेज
भोपाल
२५–९–५६

"जय सन्माति"

प्रथम सर्ग

धन्य देश यह भारत जिसमें, तीर्थंकर आते हैं ।
जिनसे बने तीर्थ में जग के, कल्मष धुल जाते हैं ॥

मानवता की चरम भूमि यह, भारत भू कहलाती ।
इसमें जो आते तिर जाते, जग को शील सिखाती ॥

आर्य खंड है धन्य जहाँ सुर, आने को ललचाते ।
मानव चारों फल को पाकर, सुधाहीन कर जाते ॥

उत्तर में हिम शीतलता को, विंध्य भयंकरता को ।
गंगा यमुना बतलाती हैं, पय से पावनता को ॥

यहीं विदेह देश सुन्दर था, जन-मन मंगलकारी ।
जिसकी सुन्दरता के आगे, अमरपुरी भी हारी ॥

यहाँ जीव देही होकर भी, सच विदेह होते थे ।
सौंप पुत्र पर भार कभी वे, विश्व पार होते थे ॥

थी विशाल वैशाली नगरी, धर्म-कर्म की शाला ।
मानव अजर अमर होते पी, जिन धर्मामृत प्याला ॥

चार संघ चारों फल दायक, उन्नत चैत्य मनोहर ।
फहराती ध्वज पथिक बुलाती, धन्य यहाँ योगीश्वर ॥

उन्नत शिल्प कला से सुन्दर, बड़े बड़े थे मंदिर ।
भवन न मिलते ऐसे हमको, था अति-दीन पुरंदर ॥

बड़े बड़े थे बाग बगीचे, बड़े बड़े थे उपवन ।
महावनों की सौरभ हरती, करती जनमन उन्मन ॥

यहीं कहीं थी कुंडल नगरी, बनी विश्व का कुंडल ।
अति समृद्ध उसका यश गाया, करता था दिग्मंडल ॥

उन्नत था प्राकार बनी थी, उसके पीछे परिखा ।
यह आकार हीन करता था, तीन लोक की गरिमा ॥

बड़े बड़े देवालय जिनमें, धर्म सिंधु लहराता ।
जिनके घन गंभीर घोष से, पाप पुंज थर्राता ॥

थे समृद्ध संपन्न सभी नर, बड़े दान के दाता ।
जो भिक्षुक द्वारे पर आता, खाली हाथ न जाता ॥

गगनचुम्बि भवनों में रहते, सभी दिव्य मानव थे ।
बड़े विवेकी बड़े सभ्य थे, हुए दिव्य मानस थे ॥

थे उद्यान विशाल मनोहर, विविध लता तरू शोभित ।
वसुधा की हरियाली करती, गणजन को उद्दीपित ॥

बड़े बड़े बाजार वीथिका, थीं दर्पण सी शोभित ।
डगर डगर ऐसा लगता था, जैसे नित्य प्रदीपित ॥

सभी कला के भवन यहां थे, बड़े बड़े खेला घर ।
थी बच्चों की खिली मंडली, कौन न थे मेला घर ॥

नर नारी जिन दीक्षित शिक्षित, बड़े प्रेम से रहते ।
था सहयोग परस्पर इतना, कभी न पथ से चिगते ॥

पुरी नेह धारा सी सरिता, वहाँ गंडकी बहती ।
अपनी पुण्य कथा को प्रमुदित, गुण मस्ती में कहती ॥

इसी पुरी के महायशस्वी नृप प्रसिद्ध सिद्धार्थ ।
महाप्रतापी महाविवेकी, जीवन था परमार्थ ॥

करो प्रजा का रंजन हित से, भूपति का आदर्श ।
देख न्याय का शासन उनका, होता सबको हर्ष ॥

विद्वानों को मान मिला था शिक्षा का था मान ।
सबुध सभा उनकी पाती थी, गीष्पति का उपमान ॥

उनका होता मान वहाँ था, जो निष्पक्ष हृदय के ।
उनका ही अपमान वहाँ था, जो थे हीन हृदय के ॥

निर्भय थे विद्वान चिन्तना, करते थे दिनरात ।
इसीलिए वह देश बना था, भावों से अवदात ॥

मंत्री सेनापति सेना भी, उनसे सभी प्रसन्न ।
कमलालया विश्वलक्ष्मी से, राज कोष था धन्य ॥

था प्रताप सब ओर भूप का, कीर्ति रक्षिका देवी ।
श्वेत शरीरा कीर्ति दीखती, अपरा सरस्वती सी ॥

राजा से हारे चिन्तामणि, कल्पवृक्ष जो कामद ।
जड होने से हीन हुआ था, उनका हंत अजय मद ॥

उत्तमांग उन्नत हिमगिरि सा, स्वाभिमान पर चलते ।
दीन, दुखी इतना पा जाते, सुख से जीवन कटते ॥

बड़े वीर थे बड़े धीर थे, मन से थे गंभीर ।
कौन विजय इनसे पा जाता, ऐसे थे युगवीर ॥

क्या समुद्र खारा होकर के, इन से होड़ करेगा ।
क्या पर्वत भी जड़ होकर के, इनका मान हरेगा ॥

धन्य देव सिद्धार्थ धन्य थी, त्रिशला उनकी रानी ।
रति मन्मथ की अमर जोड़ी, जन जन की मनमानी ॥

पति के प्रिय कर्मों को करती, प्रिय कारिणी बनी थी ।
मन-बच-काय-व्याधियों को हर, त्रिशला सार्थ बनीं थी॥

खिली कली सी सदा मूर्ति थी, बोली मधु क्यारी थी ।
सुधा-मुधा फीकी सरस्वती, परिजन की प्यारी थी ॥

मुकुर समान विमल काया में प्रतिबिम्बित जग होता ।
नारायण का रूप धन्य, नारी से हल्का होता ॥

रूपवती प्रमदा न किन्तु थी, यौवन शांत अजय था ।
उसकी एक झलक के आगे, कोटि-चन्द्र-गन जित था ॥

उसकी सौरभ की काया से, पुष्प राजि थी नीली ।
कहीं कोप से लाल लाल थी, कहीं आज तक पीली ॥

कमलानना कहूँ मैं कैसे, कमल सदा मुर्झाता ।
कहूँ चंद्रवदनी क्या विधु भी, सांझ समय छिप जाता ॥

जंगम छवि की दीप लता सी, श्रीफल से पजित थी ।
अतः अलंकारों से उन की, शुभ काया भूषित थी ॥

उनके अंग अंग से सुन्दरता, फूटी पड़ती थी ।
पग गिरते जिस पथ में उनके, भूरज रूप बदलती ॥

नयन गमन का वचन जाल का, भूषा का विनियंत्रण ।
जो देखे उसका सिर झुकता, दे मन को परितर्पण ॥

विदुषी भव्य विचारों वाली, गुन गन कल्पलता सी ।
सुभाषितों की अनुपम लक्ष्मी, भूमि दिव्य रंभा सी ॥

धन्य हुए सिद्धार्थ प्राप्त कर, त्रिशला सी रानी को ।
त्रिशला भी तो धन्य हुई थी, नृप की मन चाही जो ॥

पति सेवा में क्षण क्षण यापन, रानी मन से करतीं ।
उनके सुख दुख को प्रति पल वे, अपना सुख दुख गिनतीं ॥

गृह दक्षा थीं समय न खोतीं, योग्य मंत्रणा देतीं ।
कभी विषाद भरे कटु क्षण में, नृप का मन हर लेतीं ॥

दंपति का आदर्श युगल था, सदा जिनार्चन करते ।
गृही धर्म का सम्यक पालनकर, पुण्यार्जन करते ॥

कभी घूमते बाग बगीचे, नेह डोर में बंधते ।
कभी देखते वन वैभव को, प्रकृति प्रेम में पगते ॥

भाग गये थे हंस देखते, आती वर्षा पंकिल ।
काली देख न भय कब होता, कहां न हो मन आकुल ॥

पावस के दिन थे असाढ़ था, मन भावन मनहारी ।
जगी विहार भावना नृप का,-उपवन था सुखकारी ॥

कहीं महकते गेंदा के वन, कहीं कनेर सुहाते ।
रंग विरंगे बिना गंध के, पुष्प नयन को भाते ॥

जाति कदम्ब कुसुम केतक में, भौरों का मन रमता ।
भोरों की लीला से प्रतिक्षण, दंपति नेह उमड़ता ॥

कितनी सुन्दर तितली अपना, प्रतिक्षण रुप बदलती ।
भ्रमर राजि भी उसके आगे, दिखती लुकती छिपती ॥

नई हरी भू में कंदल का, जन्म सदैव सुहाता ।
वसुधा में जन्मे अंकुर से, जीवन जीवन पाता ॥

कहीं कूजती कोकिल के रव, घन को दिखे चिढ़ाते ।
कहीं मानिनों जो सुन पातीं, मान शैल ढह जाते ॥

घन रव सुनते मोर नाचते, सरस हृदय हो जाते ।
लख प्रत्यक्ष प्रभाव जलद का, कोकिल युग शर्माते ॥

कहीं देखते घन की रवि की, लुका छुपी की खेला ।
नहीं कहीं तम ने जब पाई, विद्युत रव कह देता ॥

चलती झंझा मन कंप जाता, अंग अंग लहराता ।
कामदेव की विजय पताका, कंप बाण फहराता ॥

कहीं कुंड के पास देखते, मीन युगल को नाचते ।
धन्य मीन जो पानी में ही, अपने प्राण परखते ॥

कभी देखते इन्द्र धनुष को, कभीपुष्प उपवन को ।
पुष्पों पर प्रतिफल न्यौछावर, देखा इन्द्र धनुष को ॥

वर्षा कितनी सुन्दर होती, कौन नहीं हरषाता ।
कृषक बालिका गाने गाती, कृषक हृदय भर जाता ॥

दिखी बलाका उड़ती नभ में, जीवित पत्र लता सी ।
दिखी वियोगिन वाष्प पुंज, से उज्ज्वल देहलता सी ॥

माली के द्वारे पर देखा, शुक मैना का जोडा ।
सुनकर मीठी मीठी बातें, किसे न हो रस थोड़ा ॥

देख उछलती गौबाला को, राजा हँसते बोले ।
नर निज बंधु नहीं पहिचाने, अपने कर्म न तौले ॥

भूल गया उपकार बना है, हिंसक भी अभिमानी ।
दुनियाँ की विपरीत रीति गति, हित की बात न जानी ॥

रानी बोली बात बदलतीं, सूरज मुखियाँ धन्य ।
रवि पर निर्भर जिन का जीवन, समता कहीं न अन्य ॥

नदियां जातीं शत बलखातीं, मिलती रत्नाकर से ।
मिलकर एक प्राण हो जातीं, धन्य हिमाकर विधु से ॥

प्रकृति प्रेम में रमते लौटे, दो बातों को करते ।
वन उपवन में जाकर किनके, जीवन धन्य न बनते ॥

हुई रात चन्द्रोदय देखा, दोनों ही हर्षाए ।
प्रेम उदधि को लख उद्वेलित, चन्द्रोदधि शर्माए ॥

-: द्वितीय सर्ग :-

अंधतमस था छाया जग में, नहीं शांति थी दीख रही ।
अपनी अपनी ओर खींचते, दीख रहे थे संत कहीं ।।

सतयुग की अवशेष ज्योति भी, आकर यहाँ समाई थी ।
भ्रांत भाव थे भ्रांत कल्पना, भ्रांति सभी पर छाई थी ।।

आशा की रेखा को छूकर, ज्यों निराश मन होता है ।
ज्यों प्रकाश की किरणें खोकर, अंधकार में सोता है ।।

संध्या ज्यों निज राग लालिमा, अंधकार में धोती है ।
त्यों जगती यामा में पड़कर, अंधी होकर रोती है ।।

थी विचार की धाराएं वे, जिनका कोई मोल नहीं ।
जीवन के अनुभव से जिनका, होता कोई तौल नहीं ।।

चिन्तक ने चिंतन से ठगना, अपना ध्येय बनाया था ।
माया में सर्वस्व मिटाकर, मायामय हो जाना था ।।

दिन औ' रात जहाँ काले हों, मानव मति क्यों उजली हों ।
यज्ञधूम से क्रियाकांड से, ज्ञान किरण जब धुंधली हो ।।

काजर की कोठी में रहना, काला ही तो होता है ।
भोली भाली जनता का तो, सभी जगह ही रोना है ।।

फैल रहे नर यज्ञ मनुजता, बेचारी थी सिसक रही ।
दानवता की देख भीष्मता, पदतल भू थी खिसक रही ।।

महिला का अपमान घोरतर, उन दिवसों का लेखा था ।
चाहे पद हो उच्च, प्राप्त फल, यह तो निंदित देखा था ।।

धर्म ओट में नंगा लोलुप, मानव मौज उड़ाता था ।
सुरापान या सोमपान सब, निंद्य नहीं कहलाता था ॥

वहाँ असुरता पले नहीं तो, और कहां पल सकती थी ।
वहाँ मनुजता नहीं जले तो, और कहाँ जल सकती थी ॥

राज्यवाद साम्राज्यवाद की, सदा भावना बुरी रही ।
जनता से क्या मान-भावना-,पूर्ण लोभ हो श्रेय कहीं ॥

धनबल कुलबल लोभ-मान-बल, इन से मानव छला गया ।
भौतिक बल के दुरुपयोग की, चक्की में मन दला गया ॥

राज्यों में भी शांति नहीं थी, सभी चाहते बढ़ना थे ।
पार्श्व-राज्य का किसी तरह भी, चाह रहे वे जलना थे ॥

जीवन का था बना लक्ष्य यह, राज्य प्राप्त हो जाना ही ।
जनमन पर शासन बल द्वारा, करने का सुख पाना ही ॥

प्रजातन्त्र गणतन्त्र राज्य थे, किन्तु शांति थी वहाँ कहाँ ।
प्रेम नहीं था राज्य नशा था, होता तब अनुराग कहाँ ॥

मान प्रबल था डाह बुरी थी, पिता पुत्र का मेल न था ।
उच्च उच्च बलवान कुलों का, यह साधारण खेल न था ॥

प्रजा सहे विपदाएं शतशः, इसकी थी परवाह नहीं ।
करुण कथाएं बने अनेकों, उनकी कोई आह न थी ॥

हंत ! हुआ वैभव उन्मादक, शांति शृंखला रही नहीं ।
आँधी चलने पर सहसा ही, छूट गई पतवार कहीं ॥

अनाचार साधारण जनता बेचारी यों सहा करी ।
दबी रही आवाज उसीकी, दीन विचारी जगी नहीं ॥

हंत ! अंध विश्वास सदा से, उपजाता दुख रहा यहाँ ।
अन्तर्दृष्टि बिना पाए जन, पछताता ही रहा यहाँ ॥

सत विवेक वह मानव जिससे, सौख्य सुधा पा जाता है ।
कर्मराशि के बंध काटकर, जगत पार हो जाता है ॥

जातिवाद हो चला रूढ था, जन्म प्रधान कहा जाता ।
जन्म-उच्च कुल-वैभव मद से, मानव का मन इतराता ॥

बिना किए शुभ कर्म मनुज सच, उन्नत पद पा जाते थे ।
हीन विचारे उच्च कर्म कर, हीन सदा कहलाते थे ॥

ढकी हुई थी वैभव नीचे, सारी काली लीलाएं ।
बढ़ा हुआ था प्रबल परिग्रह, कहाँ सुखी जीवन पाएं ॥

मना रहे थे देव देवता, कोई हो अवतार यहाँ ।
जो कल्याण करे जगती का, बता सके सुख राह कहाँ ॥

सभी त्राण पाएं प्राणी जन, जीवन का हो मोल यहाँ ।
रहे समाज सुखी जिस नय से, बने धर्म की तौल यहाँ ॥

नहीं धर्म की परिभाषाएँ, आज किसी की चिंत्य हुईं ।
राज्यों को संग्राम बुध्दियाँ, सभी तरह से निंद्य हुईं ॥

नहीं आत्म पहिचान पराया, ज्ञान कहाँ से हो जाए ।
जिससे अखिल विश्व का प्राणी, त्राण नया जीवन पाए ॥

अन्तर्हित थी इस युग में सच, अति प्रज्वलित महाज्वाला ।
नेमि-पार्श्व की शिक्षाओं को, भूल गया जन मतवाला ॥

जगती जाती थी वह ज्वाला, जिसने युग निर्माण किया ।
जीवन का सर्वस्व मिटाकर, जीवन का वरदान दिया ॥

इसी तरह चिन्ता में मानव, दुख में दिन थे बिता रहे ।
घड़ा पाप का फूटेगा ही, छलके आंसू जता रहे ॥

घोर निराशा में भी आशा,-की तारा थी चमक रही ।
अंधकारमय संध्या में ज्यों, तार तरैया दमक रही ॥

तेज पुंज सूरज के आगे, अंधकार ज्यों हट जाता ।
शांति सुनहली छा जाती है, दैत्य स्वतः ही भग जाता ॥

उसी तरह लख प्रकृति विश्व की, हर्ष मत्त थी दिखा रही ।
जड़-जंगम की दशा देख यह, जनता सुख थी मना रही ॥

सूखे कूप भरे जल से थे, हरियाली सब ओर हुई ।
सूखे निष्फल वृक्ष फले थे, पुष्पवती भू सफल हुई ॥

पुष्पों ने तज समय प्रतीक्षा, असमय साज सजाथा था ।
नन्दन वन की शोभा ने भी, अपना ताज झुकाया था ॥

कुण्डलपुर के वनमाली ने, दे डलिया सन्देश कहा ।
उपवन का कणकण हे नृपवर ! गत वैभव को लजा रहा ॥

पत्ते पत्ते डाली डाली, कोयल कूक रही वन में ।
पत्ते देते ताल नाचती, लता वायु हर्षित तन में ॥

सभी आम सहकार हुए हैं, भौरों में भी प्रेम भरा ।
खिली कली से जीवन नाता जोड़, नया है नेम धरा ॥

चम्पा में अनुरक्त भ्रमर भी, नेम पालता दिखा रहा ।
सभी विरोधी पशु पक्षी गन, वनमें मंगल मना रहा ॥

हो प्रसन्न राजा ने उसको, यथाशक्ति था दान दिया ।
निमित्तज्ञ विद्वानों से फिर, उसके फल को जान लिया ॥

पापी भी निज कृत्यों से अब, घृणा स्वयं करते दीखे ।
मुख भी उनके दमक रहे थे, जो थे बेचारे फीके ॥

प्रकृति प्राप्त वैभव से फूली, जनता थी सुख मना रही ।
आशा थी अन्याय हटेगा, निज साहस बल जगा रही ॥

था आसाढ़ सुदी पंचम दिन, संध्या में नृप ने देखा ।
सूर्य किरण से पिघल रही ज्यों, मेघ शिखा अचरज लेखा ॥

सभी मन्दिरों की शिखरें तब, नई ज्योति से निखर उठीं ।
अंधकार की शिला टूक हो, जैसे जग में बिखर उठी ॥

सब मंदिर में नृप का मंदिर, बिजली सा था चमक रहा ।
जैसे स्वर्ण विनिर्मित हो या, अचल स्वर्ण का शैल महा ॥

रात्रियोग में रानी से जब, राजा ने आश्चर्य कहा ।
पुलकित अति हर्षित रानी ने, बार बार था हर्ष कहा ॥

उसी रात के अंत प्रहर में, रानी स्वप्निल हो बैठीं ।
सोलह स्वप्न मनोहर लखकर, जग की वंद्या बन बैठीं ॥

प्रात: सज रानी ने जाकर, सभा भवन में स्वप्न कहे ।
उत्कंठित विस्मित राजा ने, बड़े ध्यान से स्वप्न सुने ॥

अपनी प्रज्ञा के बल से तब, सब का था व्याख्यान किया ।
युग युग का उन्नायक नेता, वीर जनेगी मान दिया ॥

स्वच्छ धवल ऐरावत हाथी, निर्मलतम यश को देगा ।
धीर वीर वह पुत्र बनेगा, बाधाओं को हर लेगा ॥

धीरों में भी श्रेष्ट बनेगा, सत्य लोक में व्यापेगा ।
कपट पाप जगती से जल्दी, उसके आने भागेगा ॥

गरज रहा जो सिंह सिंह सा, वह भी निर्भय गरजेगा ।
जो पापी फिर भी धर्मात्मा, उनके मन को तरजेगा ॥

धर्म ओट में होने वाले, पाप नष्ट हो जावेंगे ।
त्रस्त प्राणिजन सुख अभिलाषी, सत्य राह को पावेंगे ॥

वृषभ स्वप्न सूचक जगती में, धर्मराज कह लाएगा ।
धर्ममूर्ति पाखन्ड धर्म का, संहारक बन जाएगा ॥

सकल लोक का स्वामी होगा, सब ही शीश झुकाएंगे ।
उसके अनुयायी सच्चे जन, चिदानंद को पाएंगे ॥

दो माला का दर्शन सब के, भव संताप मिटाएगा ।
दृश्य अदृश्य जगत दोनों के, सुख का दर्शन लाएगा ॥

बतलाएगा श्रेष्ठ विश्व में, मुक्ति रमा का सुख होगा ।
अमर अनन्त विश्व उपकारी, धर्म तीर्थ दुख खोवेगा ॥

सुन्दर लक्ष्मी मूर्ति लोक का, सुन्दर वैभव देवेगी ।
वे मारेंगे लात और वह, उनके पद को चूमेगी ॥

उनकी काया में जग की सुन्दरता चंचल दीखेगी ।
इस अनंत सौन्दर्य मूर्ति से, लक्ष्मी लज्जित होवेगी ॥

पूर्ण चन्द्र का दर्शन सब को, अति आनन्द दिलाएगा ।
पशु पक्षी में स्वर्ग नरक में, सुमानंद जगाएगा ॥

अमर बनाने वचन सुधा को, बारं बार पिलाएगा ।
शत्रु मित्र उद्धारक बनकर निष्कलंक कहलाएगा ॥

सूर्य समान प्रखर तेजस्वी, जग अज्ञान मिटाएगा ।
दृश्य अदृश्य लोक के तम को, तृण सम शीघ्र जलाएगा ॥

बड़ों बड़ों का मान मिटेगा, पद में नत हो जावेंगे ।
जो आगे आ करें सामना, वे तो मुँह की खावेंगे ॥

भरे हुए दो स्वर्ण कलश, बतलाते गुण भंडार बने ।
नाम मात्र गुण संगन औगुण, होंगे जग हितकार बने ॥

जहाँ रखेगा पांव धूलि वह, जग पूज्या बन जाएगी ।
पाप पुंज की अजय राशि को, क्षण में जयकर जाएगी ॥

निर्मल सर में क्रीडा करता, मीन युगल सुखदायी हो ।
वह अनंत सुख का संभोगी, परम शक्ति का भागी हो ॥

वह अनंत जय कुल को देगा, सब का होकर हितकारी ।
मानव जन्म परिधि नापेगा, अनुपम मति श्रुत का धारी ॥

दिखा सरोवर बतलाता है, होगा शुभ लक्षण धारी ।
देख ज्योतिषी उन लक्षण को, होंगे विस्मित भी भारी ॥

ज्योतिष शास्त्र अपूर्ण अभी तक, अब पूरा कहलाएगा ।
धर्म रहस्य बताने वाला, स्वयं देव बन जाएगा ॥

विस्तृत पारावार उसे जग-, का दर्शक बतलता है ।
तीन लोक का निर्मल दर्शी, जगत पार कहलाता है ॥

उस की नीति सुविस्तृत निश्चित, जग हित कारी होवेगी ।
सभी समाज व्यवस्था उसके, पग में कल्मष धोवेगी ॥

कहता रत्न जटित सिंहासन, अद्भुत शासक होवेगा ।
तीन लोक साम्राज्य उसी के, चरणों में ही लौटेगा ॥

बिन अभिषेक बना कब राजा, एक छत्र कहलाएगा ।
शरणागत बिन पक्षपात के, अभय शरण को पाएगा ॥

सुर विमान का दर्शन जग को, स्वर्ग समान बना देगा ।
स्वयं स्वर्ग से आकर मानव-,गति को उच्च बता देगा ॥

मानवता का मूल्य विश्व के, सारे कल्मष धोना है ।
पर हित में अपने को खोकर, जगत पार ही होना है ॥

नाग भवन प्रज्ञा का अतिशय, वीर पुत्र के बतलाता ।
अन्तर्नयन खुले होवेंगे, जन्मजात यह दिखलाता ॥

पांच ज्ञान में अवधि ज्ञान को, जन्म काल से पाएगा ।
मानवता की सीमा से वह, परिज्ञात हो जाएगा ॥

रत्नों की ढेरी उसके गुण, रत्नों का लेखा करती ।
या गत मानव रत्नों का वह, पुंज बनेगा यह कहती ॥

ऐसे मानव-रत्नों ने कब, कहाँ स्वर्ग में जन्म लिया ।
इसी लिए रत्नों ने मस्तक, स्वाभिमान से उठा दिया ॥

बिना धूम की जलती आगी, उसका तेज बताती है।
ध्यान शक्ति का केन्द्र बनेगा, जो कर्मों को ढाती है॥

इस प्रकार सोलह स्वप्नों का, फल महान सुखदायक है।
भाग्य विश्व का सर्व हितंकर, अपना कुल परिचायक है॥

वृष प्रवेश मुख में बतलाता, धर्म सबान गर्भ आया।
धन्य जन्म अपना अपना कुल, स्वप्न मर्म मन को भाया॥

सिद्ध अर्थ सिद्धार्थ आज मैं, त्रिशला के त्रय शल्य हरे।
त्रिशला बोलीं भाग्य हमारे, पुत्र विश्व के शल्य हरे॥

मन में नहीं समाई रानी, अन्तपुर में ज्यों आई।
रूठे घर की लक्ष्मी मानों, फिर से लौट वहाँ आई॥

हरा भरा घर लगा उसे अब, तुच्छ स्वर्ग भी जान पड़ा।
माँ की ममता माँ ही जाने, जिसको घर भी स्वर्ग बड़ा॥

मन में नहीं समाई रानी, देख दासियों ने घेरा।
रूठे रात मना लाईं क्या, फूला फूला मन तेरा॥

शर्माती मुसकाती रानी, बोली अच्छा हास्य मिला।
तुम तो हारी जीत न पाईं, इसीलिए अब हृदय जला॥

गलबहियाँ जब गले पड़ीं तो, सभी बात मन की पूछी।
सुन कर दासीं बोलीं रानी, अपनी किस्मत है रुठी॥

चाह रहीं कब गोदी तेरी, हरी भरी देखें रानी।
कहो हंसी है नहीं, सत्य सब, सुख की आह भरें रानी॥

रानी बोली देव तुम्हारे, स्वप्नों का फल कहते हैं।
हम तो गोदी शून्य लिए ही, सुनने का सुख लेते हैं॥

दासीं बोलीं देव हमारे, कभी असत्य न कहते हैं।
जो भविष्य में होना कहते, वे सब सच्चे होते हैं।

धन्य हमारे देव, हमारी,--दुनियाँ भी अब धन्य हुई ॥
घर के देवों की निशदिन की, आज अर्चना सफल हुई ॥

दासीं बोली दोगी क्या तुम, गोदी होगी हरी भरी ।
जो मांगोगी वह मैं दूँगी, वही लाल जो गोद भरी ॥

नाम मात्र की मैं माँ हूँगी, तुम सच्ची कहलाओगी ।
मैं तो उसको खिला न पाऊँ, तुम उसको दुलराओगी ॥

दासी बोली चाह नहीं कुछ, सदा खिलाने देना तुम ।
हाथ लगाना भूल नहीं तुम, सदा झुलाने देना तुम ॥

रानी बोली सदा पराये-धन की रक्षा सरल नहीं ।
मुझ से नाता टूट गया तो, मैं रोकूंगी नहीं नहीं ॥

मेरे घर की सभी बनी तुम, दूर कहाँ ले जाओगी ।
मुझ को ठग कर कहो कहाँ तक, अपना मन बहलाओगी ॥

गर्भवती होने का रानी का सन्देश शीघ्र फैला ।
ग्राम ग्राम प्रत्येक नगर तब, बना खुशी का था मेला ॥

युवतीं वृद्धा प्रौढ वयस्का, देतीं आशीर्वाद घने ।
जगहितकारी शांति विधायी, धर्मप्राण तूं पुत्र जने ॥

निर्विकार त्रिशला शरीर लख, सब आश्चर्य किया करतीं ।
कितनी सुन्दरता उभरी सी, अंग अंग दिखला पड़ती ॥

धन्य महा पुरुषों की गाथा, अति आश्चर्य दिखाती है ।
फिर भी युग की भोली जनता, निज संदेह बताती है ॥

महाजन पदों की युद्धों से, अब विरागता दीख पड़ी ।
दूर दूर के देशों में भी, शांति उषा थी लहर उठी ॥

कुंडलपुर में चमक रही थी, घर घर रत्नों की ढेरी ।
धन धान्यों की उपज चौगुनी, स्वर्ग श्री जैसे चेरी ॥

मंत्री भूपति के विस्मित थे, देख खजाने का वैभव ।
प्रतिदिन बढ़ते रत्नों से था, हा ! कुबेर धन का परिभव ॥

जितना देते दान चौगुनी, उससे बढ़ती राज्यनिधि ।
बचा न कुंडलपुर में भिक्षुक, क्या करता तब दीन विधि ॥

तीन लोक आनन्द मत्त था, घर घर मंगल गान हुए ।
जैसे सबके सूने घर में, कुलदीपक उपमान हुए ॥

घर घर रत्नों के दीपक की, आवलियाँ थीं शोभ रहीं ।
कृष्ण पक्ष की शुक्ल पक्ष पर, उसी समय थी विजय रही ॥

घर घर से रत्नों की थालीं, उपहारों में आतीं थीं ।
मणियों के आभरणों की तो, उपमा कही न जाती थी ॥

हाथी घोड़ा रत्न कलात्मक,-चित्र विश्व से प्राप्त हुए ।
भूपति से वे बचे न कोई, जो न कृपा के पात्र हुए ॥

रानी की सेवा में रहतीं, उच्च कुलीना दासीं थी ।
दिव्य अंगना मानों उनके, कृपा प्यार की प्यासीं थी ॥

गर्भकाल की सेवा में वे, अति चतुरा कहलातीं थी ।
हंसी प्यार की बातों से मन, रानी का बहलातीं थी ॥

हंसी प्यार की बातों में भी, रहा सदा गाम्भीर्य भरा ।
जीवन तत्वों की चिन्ता से, हरयाती थी नेह धरा ॥

-: तृतीय सर्ग :-

ढलता सूरज कह गया उदय, मैं ढलने पर ही पाता हूँ ।
पर पुण्य आज ढलना न हुआ, मैं सन्मति के गुण गाता हूँ ।।

तम ने जय आज नहीं पाई, ज्योत्स्ना मुसकाती सी आई ।
आवरण छोड़ मुख का मन को, नव ज्ञान किरण देने आई ।।

किलकारी भरने लगे विहग, सब ओर गीत की ध्वनि भाई ।
रवि और चन्द्र के संगम में, सब में सुमित्रता लहराई ।।

तमचुर जागे कलविंग उठे, शुक पिक की मीठी बोली थी ।
माधुर्य भरे स्वर नेक जगे, संगीत कला की होली थी ।।

कलियाँ बोलीं यह कौन घड़ी डाली डाली वन की फूली ।
पुष्पों की कोई जाति नहीं, जो आज न हो फूली फूली ।।

कितना मन भावन आकर्षक, जीवन में यह दिन आया है ।
सब मिलें गले पुलकित होकर, जीवन में जीवन आया है ।।

सुर असुरों में उत्सव छाया, उड़ते विमान थे दिखा रहे ।
मानों नभ आया धरती पर, दोनों मिल उत्सव मना रहे ।।

ताराएं तारों से बोलीं, कितगा प्रशान्त अध्यात्म लोक ।
जिसके प्रकाश में हम द्योतित, फैली किरणें बिन रोक टोक ।।

नीले सफेद पंकज बोले, कैसा प्रभात प्यारा आया ।
संध्या भी लाल लिए गोदी, अनुराग रंग भी लहराया ।।

पर में फैला वृत्तान्त शीघ्र, राजा को अनुपम रत्न मिला ।
कोई घर बचा न सूना वह, जिसमें न नेह का दीप जला ।।

यह चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी, पावन सब को मनभावन थी ।
होंगे प्रशान्त सब पाप पुंज, इसलिए हुई हर्षावन थी ॥

घर घर में मंगल गान हुए, पक्षी कलरव ने योग दिया ।
सबके स्वर में माधुर्य भरा, बन सका न कोई मूक हिया ॥

जिनकी किस्मत को कभी नहीं, सुख की रेखा थी छू पाई ।
नरकों में उनको सौख्य मिला, ज्यों सूखी धरती हरयाई ॥

स्वर्गीय पुष्प व्रज वर्षा से, धरती का मुख हर्षाया था ।
भीना सुगन्ध से कल कण था, सुरभित समीर लहराया था ॥

संगीत नृत्य के संगम ने, धरती को स्वर्ग बनाया था ।
बच सका न कोई कलाकार, जिसने सन्मान न पाया था ॥

बालक का सुन्दर रूप देख, सुर नर परिजन चकराए थे ।
चंपक से सुन्दर लख आभा, कवि वर्णन में बौराए थे ॥

लख सूर्य चन्द्र धनु ध्वज मन्दिर, ज्योतिषी हुए हर्षित भारी ।
बोले नरेश ! इस बालक की, गुण की गाथा जग से न्यारी ॥

ऐसा प्रशान्त गाम्भीर्यमयी, लावण्यभरा कब रूप मिला ।
इन आँखोंको इस नरभव में, कब परम सुगंधित पुष्प खिला ॥

यह शिव नेता होगा, न कहीं, कोई तुलना को जाएगा ।
जग नेता युग युग जन्म तपे, इनकी न चरणरज पाएगा ॥

राजारानी सुन बाल विभव, मन में फूले न समाते थे ।
बच्चे के प्यार खिलाने में, बहलाने में सुख पाते थे ॥

बच्चे का हास अमृत मानों, सबको वितीर्ण सा करता था ।
या कुन्द पुष्प की मालाओं से, जग का आंगन भरता था ॥

घुटनों के बल धीरे धीरे, बच्चे का रिंगना प्यारा था ।
हुँका देना किल किल हंसना, जगती में सब ही न्यारा था ॥

सुरदासी दास खिलाते थे, कर पकड़ पकड़ निंगवाते थे ।
डगमग पग किंकिणि ध्वनि दोनों, नर्तन आनन्द दिलाते थे ॥

जो चीज हाथ में आजाए, मुँह से न कभी वह दूर बने ।
बालक की स्वाभाविक क्रीडा को, कौन रोक कर सूर बने ॥

महलों की मणि निर्मित भू में, चहुँ ओर काँच में दिखते थे ।
मानों संसार इन्हीं का है, विधि बैठे बैठे लिखते थे ॥

जिस ओर पाँव पड़ते उनके, मानों सरोज-संसार बसा ।
दिन में नीलम में नील कमल, फूले यह थी आश्चर्य दशा ॥

बच्चा सुन्दर हो या कुरूप, तुतलाती बोली प्यारी है ।
जगमें अति सुन्दर बालक की, बोली तो मधु की क्यारी है ॥

स्वर्गीय मनोहर आभूषण, क्षण क्षण सौन्दर्य बढ़ाते थे ।
अन्तर्बहिरग रमा संगम, में सब जन पूत दिखाते थे ॥

उज्ज्वल आभा में वसन मिले, निर्ग्रंथ सरीखे लगते थे ।
जिस ओर नेत्र उनके ढलते, आनन्द लोक शत बसते थे ॥

रवि और शशी उनकी तुलना, के आगे शीश झुकाते थे ।
सौन्दर्य देवता के पूजक, लावण्य पार कब पाते थे ॥

शिशुदेव बढ़े सित चन्द्र तुल्य, जन नेत्र चकोर बने से थे ।
माँ और जनक के चित्त कहीं, राका-पति से भी हीनन थे ॥

वे वर्धमान थे बचपन से, जनता का वैभव बढ़ता था ।
वाणी का अद्भुत दिव्य लास, धीरे धीरे से बलता था ॥

प्रस्फुटित हुई वाणी सब के, मनमें आनन्द जगाती थी ।
कविता की बोली भी उनके, दो बोल न जित कर पाती थी ॥

विभुज्ञान बिना गुरु बढता था, अनुभव क्षणक्षण का गहरा था ।
त्रिशला सिद्धार्थ युगल इससे, आश्चर्य अनोखा करता था ॥

सावधि ज्ञान वढ़ चला शनैः, निर्मल अन्तर की ज्योति हुई ।
जिन धर्म और जनधर्म ज्ञान, जगती की अक्षय भूति हुई ॥

पर बालक आकर देवसंग, शत खेल अनोखे रचते थे ।
चातुर्य खेल विभु के प्रतिक्षण, सबके मन हर्षित करते थे ॥

वे खेल खेलने वन जाते, आज्ञा के बन्धन तोड़ तोड़ ।
निर्भय बनकर घूमा करते, आज्ञा बन्धन से जोड़ जोड़ ॥

फल फूल तोड़कर लाते थे, सब को समान दे देते थे ।
तब कहीं अन्त में खाते थे, इस लिए मान सब देते थे ॥

बचपन की नेहमयी जगती, सब को जीवन में प्यारी है ।
बन जाय विश्व यह स्वर्ग कहीं, तो जीवन न्यारी क्यारी है ॥

होता न मान अभिमान कहीं, सब में समानता लहराती ।
मद मत्सर मोह स्वार्थ सरिता, बचपन सागर में घुल जाती ॥

मीठीं मीठीं भोली बातें, सब के मन को ललचाती हैं ।
इस जीवन की सारी बातें, मीठी बन याद सताती हैं ॥

वह थली स्वर्ग बन जाती है, जिससे इसका सम्बन्ध बना ।
सरिता संस्था बन उपवन या, खेला गृह भी सुखधाम घना ॥

मित्रों के संग विभु एक दिवस, थे खेल रहे वन में खेला ।
उनके उत्सव रव करते थे, संगीत कला की अवहेला ॥

इतने में इनके मित्रों ने, वटवृक्ष तले देखा सुनाग ।
फण फैलाये अति कोप रुष्ट, ज्यों उगल रहा हो तीव्र आग ॥

सब लगे भागने भीत हुए, नेकों की वाणी रुद्ध हुई ।
हो गए पीत आनन सबके, संकेत गिरा तब शुद्ध हुई ॥

कोई चिल्लाए शरण मिले, हे देव तुम्हारे साथी हैं ।
तुम निर्भय हो तो हम भी तो, इस निर्भयता के भागी हैं ॥

बोले जिनेन्द्र तुम मेरे हो, तो कायरता क्यों दिखलाते ।
क्या वीर पंथ के अनुयायी, हैं कायरता को अपनाते ॥

तुम रखो आत्म विश्वास अचल, पत्थर पर फूल उगा सकते ।
तुम रखो धैर्य उल्लास अटल, नवयुग को सहसा ला सकते ॥

वह वीर पुरुष कैसा मानव, जो दो क्षण भीति न सह पाए ।
घन अंधकार के युग में जो, नव ज्ञान किरण ना फैलाए ॥

मैं उसे अकेला हूँ समर्थ, पर मिलना है कर्तव्य एक ।
बूदों बूदों के मिलने से, बनते असीम सागर अनेक ॥

आओ मित्रो ! निर्भीक बनो, मैं उसके मद को हरता हूँ ।
दो क्षण में देखो उसको मैं, निर्जीव सर्प सा करता हूँ ॥

उत्साह अटूट लिए सबने, तब विभु को नेता लिया मान ।
कटिबद्ध बने आगे सबके, थे वर्धमान वे पूर्णज्ञान ॥

था आग उगलता सर्पराज, फण चला रहा था बार बार ।
पर वर्धमान वे क्या कम थे, थे दिखा रहे खेला अपार ॥

उस शैल सर्प के फण पर वे, सहसा बैठे वह हिल न सका ।
फिर निर्विषकर भूपर पटका, पर वह न वहाँ से डोल सका ॥

सब बोल उठे जय वर्धमान, तुम अद्भुत वीर साहसी हो ।
तुम सा न नाग का वशीकरण, जो अद्भुत भेष राजसी हो ॥

मुख मोड़ बुलाया मित्रों ने, पर नाग न जाने कहाँ गया ।
यह देख हुए भयभीत सभी, आश्चर्य चकितदल छला गया॥

विभुने सब को धीरज देकर, निर्भय बनने का पाठ दिया ।
"जय महावीर"की नभ ध्वनि ने, सबके संशयको काट दिया॥

बोले जीवन में नाग नेक, वे हैं विचार के घोर शैल ।
उनको निर्विष कर बढ़ना है, तब कहीं कटेगा आत्म मैल ॥

घर घर में फैला समाचार, जय महावीर जय महावीर ।
गणनायक राजकुंवर अपना, है आत्मवीर औ' आत्मधीर ॥

यह धन्य देश कुंडलपुर है, हैं धन्य हमारे महाराज ।
ले सके होड़ इनसे ऐसा, दिख रहा कौनसा राज आज ॥

जब लगे डाँटने पिता उन्हें, माँ की गोदी में उछल गए ।
बोले—'राजा बन हम पर भी, क्या शान जमाने उबल गए ॥

देखो माँ का मैं प्यारा हूँ, माता मुझको दुलराती है ।
पर तुम तो सदा डाँटते हो, क्या बीतीं याद न आती हैं ॥

तब—बोले जनक लाड़ले हो, दो गाल बता मैं चूमूं तो ।
मैं डाँट भले को करता हूँ, दो हाथ बता मैं झूमूं तो ॥

बोले-"बेटा आ गोदी में, मैं वही करूं जो बोलोगे" ।
वे हंसते हंसते बोल उठे, "तुम राजा झूठ न बोलोगे" ॥

अच्छा आया मैं गोदी में, झूला उपवन में डलवा दो ।
सावन के प्यारे दिन आए, झूला का उत्सव करवा दो ॥

डल गए सुनहरी झूले जब, पुर बच्चों के मन झूल उठे ।
ज्योंही पहुंचे विभु मित्र संग, सब पुष्प जाति वन फूल उठे ॥

बिन ऋतु तरुओं में फूल लगे, सब के मन में आश्चर्य हुआ ।
सब ने खाया जो मनभाया, फिर झूले का उल्लास हुआ ॥

करते थे होड़ परस्पर में, किस का झूला नभ छूता है ।
डाली में लगते झोंका वन, कितने आमों से पुरता है ॥

गायन नमि नेमि पार्श्व के थे, उल्लास कमल सा छाया था ।
त्रैलोक्य रीझता उन पर था, तन में प्रस्वेद समाया था ॥

पर विभु का देह अछूता था, वे कहते-"तुम सब हार गए" ।
उत्तर मिलता तब मित्रों से, श्रम जल से जीवन पार हुए ॥

हमने श्रम किया बहुत भारी' तुमको होता श्रम नाम नहीं ।
उत्तर देते विभु इसीलिए, तुम सब का जय का काम नहीं ॥

कहते सहसा डोरी टूटी, गिर पड़े भूमि पर गुण-आकर ।
भगवान अनिष्ट न हो पाए, चिल्लाए साथी भय खाकर ॥

पर विभु भी ऐसे बने कि जैसे चोट लगी उनको भारी ।
सब उतर पड़े बोले साथी, "उठ बेठो प्यारे बलधारी" ॥

विभु बोले-घुटने टूट गए, मैं उठूं कहो किस के बल पर ।
साथी बोले जिसको लगती, वह रोता है जी भर भर कर ॥

कर रहे बहाना हम से तुम, देखो पत्थर दो टूक हुए ।
घुटनों का खून सफेद रखा, क्या किये बहाना मूक हुए ॥

तुम पुष्पदेह बलधारी हो, आओ फिर से सब भूलेंगे ।
इस पर तरसे सर्वार्थ सिध्द, हम भी तो जी से फूलेंगे ॥

बोले कुमार-"लो उठा मुझे, विश्वास तुम्हें हो जाएगा ।
मैं सच कहता मैं उठ न सकूँ, सब का संशय धुल जायगा ॥

माने न सभी बल लगा दिया, पुर परिजन देख रहे लीला ।
बल हीन बने उनके साथी, छा गई सभी के मन व्रीडा ॥

राजा रानी दौड़े आए, उठ पड़े देव बिन लगा देर ।
करताल बजे मधु रव फैले, छलने में इतनी लगी देर ॥

मन भाया बँटवाया प्रसाद, जनता ने नाम दिया सुन्दर ।
अति वीर बाल क्या बाँका हो, जयराज कुँवर जयराज कुँवर ॥

उसके शरीर की मत्तगंध, स्वाभाविक मन को हरती थी ।
कोई न पारखी ऐसा था, जिस को न दिव्य वह लगती थी ॥

उनकी खेला थी संयम की, उनकी संगति हितकारी थी ।
जो मिलता उन से उनका था, यह उनकी बात निराली थी ॥

थे बालक बोध न बालक का, वह कला न जिसका ज्ञान न था ।
सब को देते थे ज्ञान सत्य, पर इस का तो अभिमान न था ॥

जब कोई प्रश्न पूछता था, बन जाते थे भोले अजान ।
फिर उत्तर देते तर्क युक्त, मेरा कहता है यही ज्ञान ॥

सुनने वाले चकराते थे, संशय रहता था लेश नहीं ।
जो समझ लिया सो समझ लिया, फिर होता था वह पेश नहीं ॥

उनका समझाना सरल किन्तु, उसका उतारना दुर्भर था ।
वह सच्चा समझा कहलाता, जो जीवन उस पर निर्भर था ॥

उनकी अपनी थी बाल सभा, जिसके नेता वे कहलाते ।
करते थे साक्षर सहित ज्ञान, सब गुरु का गौरव अपनाते ॥

था समय ज्ञान, निस्पृह गुरूने, निर्लोभ सामयिक ज्ञान दिया ।
वह हुआ कौन इस दुनियाँ में, जो समय ज्ञान बिन बड़ा हुआ ॥

प्रतिदिन सुनते थे मात पिता, अपने बालक से ली शिक्षा ।
जनता के वीर बने विभु थे, सब कहते मिली वीर दीक्षा ॥

निज बाल सभा में बैठे थे, प्रभु एक दिवस उल्लास लिए ।
इतने में संजय और विजय, आ गये सार्थ मुनि नाम लिए ॥

सब ने आदर कर मान दिया, "पूछा कैसे क्यों कष्ट दिया ।
क्यों प्रभो! न मुझको बुलवाया, क्या वर्धमान का दुष्ट हिया" ॥

मुनि बोले-तुम हो करूणाघन, तुम सा न करूण कोई होगा ।
जो बने स्वयं शिव शिव नेता, उससे बढ़ कौन कहाँ होगा ॥

तुम ज्ञान वृद्ध थे इसीलिए, हम संशय से चकराये से ।
आगए काटते चक्कर तो, संशय भागे बौराये से ॥

था प्रश्न एक इस दुनियाँ में, सब को उत्तम क्या प्यारा है ।
तुम को लख प्रश्न हुआ जर्जर, सब को निज आतम प्यारा है ॥

वह आत्मा अक्षयनिधि प्यारी, वसुधा का सब कुछ हीन यहाँ।
जो आत्म विभव को क्रीत करे, ऐसा यह वैभव दीन कहाँ॥

जो आतम ब्रह्म चराचर में, पहिचानेगा धर कर विवेक।
कर ले विशुद्ध निर्मल निजको, वह सत्य बनेगा वीर एक॥

तुम सन्मति हो तुमसे सन्मति-
हों जीव विश्व को पार करें।

मानव-समाज-मुख उज्ज्वल हो,
युग युग के कल्मष क्षार करें॥

-: चतुर्थ सर्ग :-

शैशव कौमार्य परस्पर, इतराते औ' बलखाते ।
यौवन की किरणें छूकर, मन के पंकज खिल जाते ।।

आता वसंत जब वन में, सूखे भी हरयाते हैं ।
कोकिल के मधुरव मीठे, मिश्री कण हो जाते हैं ।।

अमराई बौराती हैं, भौरे गाते हैं गाने ।
सौरभ महका करती है, भौरें बनते अनजाने ।।

शुक पारावत गोरैया, विहगों में उत्सव छाते ।
मधु के स्वागत के गाने, सब के मन को भा जाते ।।

यौवन वसंत भी ऐसा, तन में सुन्दरता भरता ।
सौरभ में मन-गुंजन में, वह फूटा फूटा पड़ता ।।

होते विचार चंचल हैं, आँखे मचला करती हैं ।
इतनी चिकनाई होती, आँखें फिसला करती हैं ।।

इन को वश में पा जाना, साधारण खेल नहीं है ।
इन के वश में हो जाना, साधारण जेल नहीं है ।।

निर्बंधन उसका जीवन, निर्बंधन उसका हँसना ।
निर्बंधन उसकी कूकें, निर्बंधन उसका तकना ।।

बातें चंचल होती हैं, मन मचल मचल पड़ता है ।
कलनाद कहीं सुनते ही, मन विचल विचल पड़ता है ।।

सागर की लहरों जैसा, आता है ज्वारिक भाटा ।
विष मोहित हो नर गिरते, लहरों ने जैसे काटा ।।

वय संधि डुबकियाँ लेने, आईं विभु के तन सागर ।
सौन्दर्य-विभा थी निखरी, ये थे सुंदरता आगर ॥

आनन था स्वर्ण कमल सा, उनका तन मानस जैसे ।
ऊषा अरुणाई छाई, थे चिकुर भ्रमरचय जैसे ॥

खंजन दो आकर बैठे, वे दो वाहक थे मन के ।
इसलिये नयन् कहलाये, वे मोहक थे जनमन के ॥

मुक्ता संपुट में नीले, मणियों की आभा झलकें ।
खंजन के पंख बनीं थी, चिरथिरसी सुंदर पलकें ॥

आँखों की ज्योति अनूपम, रवि सी थी जीवन दाता ।
मन के प्रकाश को आँखों,-में कौन मनुज पा पाता ॥

नासा थी सजी दुनाली, सुम-शर को वश में करने ।
भौंहों का तीर चढ़ा था, विषमेशु मान को हरने ॥

आनन को चंद्र समझकर, ओठों में आये तारे ।
या विम्ब-कुंद वेला के, नर ने थे रूप निहारे ॥

उनके ललाट से हारा, द्वितिया का चंद्र मनोहर ।
त्रय विंशति तीर्थकरों का, उनका मस्तिष्क धरोहर ॥

उनका शिरीष सा कोमल, सारा शरीर था सुन्दर ।
सौरभ माधुय भरा था, तुलना में हीन पुरंदर ॥

जगती की सुन्दरता का, -कण कहीं नहीं बच पाया ।
त्रैलोक्य सृष्टि में अनुपम, इन सा न रूप बन पाया ॥

सौन्दर्य देवता ने था, चरणों में शीश झुकाया ।
इसलिए काम जीवन में, कब भूल यहाँ आ पाया ॥

आजानु बाहु थीं उनकी, कोमल मृडाल तारों सी ।
जंघाएं बनी हुई थीं, शबनम के सघन कणों सी ॥

वाणी में सरस्वती थी, था कंठ शंख सा सुन्दर ।
बिस्तीर्ण वक्ष में लक्ष्मी, बाहू थी विजित-धुरंधर ॥

मन बना धैर्य का सागर, यौवन की हार यहाँ थी ।
समता-विनम्रता उज्ज्वलता, पावन मूर्ति कहां थी ॥

थी शांति बरसती उनकी, आंखों से प्रतिपल प्रतिक्षण ।
था शील रूप सुन्दरतम, लहराता प्रतिपल प्रतिक्षण ॥

राजा के घर वैभव की, कब कहाँ कभी कब देखी ।
त्रैलोक्य देव जिस घर में, उसमें फिर क्या हो लेखी ॥

उनसे विलास भोगों के, साधन ने बचना चाहा ।
पापी के मन में भी तो, आता सुबोध अनचाहा ॥

मन से विरक्त रहते थे, पर नहीं उदासी आई ।
उनके आनन पर दिखती, दिव्यस्मिति-रेखा छाई ॥

वे बनें कहीं न विरागी, साधन एकत्रित होते ।
पर उनके आगे आते, वे सब नीरस से होते ॥

इस तरह योग-भोगों का, अति अन्तर्द्वन्द्व छिड़ा था ।
पर सुभट सिंह के आगे, कब वृक दल हुआ खड़ा था ॥

वे देख महल में चित्रों,-को मन ही मन मुसकाते ।
माँ के स्वप्नों को चित्रित, लख मोद अतुल थे पाते ॥

त्रय विंशति तीर्थंकरों के, जीवन सचित्र अंकित थे ।
विभु की जीवन-वीणा के, सब शुद्ध तार झंकृत थे ॥

रागी थे चित्र अनेकों, पर वैरागी पर रमते ।
कब कमल पत्र के ऊपर, जल देव दिख हैं जमते ॥

नभ नीला कहलाता है, पर तारे कब हैं नीले ।
कब सूर्य चंद्र बनते हैं, निज दिशा छोड़कर ढीले ॥

लख कमल पुष्प पर लक्ष्मी, थे भाव नेक लहराते ।
कब मुक्ति रमे मानस में, हों भावध्वज फहराते ॥

वाणी का वीणा-वादन, था गीत कला का दर्शन ।
वे गीत चाहते ऐसा, जिसमें निखरे जग कण कण ॥

रसना पर भाषाएँ हों, जो कहें चराचर समझें ।
जो वे विचारते मन में, उनको भी वे भी समझें ॥

जब कभी देखते नारी के, सुन्दर रूपांकन को ।
वे सोचा करते उसके,-उत्सर्ग मातृ-चुम्बन को ॥

नारी हो ऐसी जिसका, कोई न अरी बन पाए ।
शिशु जन्मे निर्मल ऐसा, जग निष्कलंक बन जाए ॥

नर ने नारी को जाना, मातृत्व जगा धरती पर ।
जो उन्नति दे जीवन में, पर बंधन भूल न वह नर ॥

वह उन्नति पथ कहलाता, जिसका परिणाम सुखद हो ।
कटु फल भी चखलो चाहे, यदि दिव्य सुधा सा फल हो ॥

जीवन को ऐसा ढालो, जिसमें सबकी उन्नति हो ।
निज का संरक्षण पूरा, समयानुकुल अवगति हो ॥

इस तरह दिव्य मानस में, भावों की धारा बहती ।
क्षण क्षण जगका परिवर्तन, भावों की धारा कहती ॥

थे भाव अनेकों उनके, मन में जो उलझा करते ।
पर दो क्षण बाद उन्हीं के, चरणों में लोटा करते ॥

मिलते थे मित्र अनेकों, बातें करते थे मनकी ।
वे कभी छेड़ देते थे, बातें बीते जीवन की ॥

बीते जीवन की बातें, किस को न याद आती हैं ।
स्वप्नों के जीवन में भी, वे कभी सता जाती हैं ॥

वे मधुर स्वप्न बन बन कर, कुछ याद दिलाया करतीं ।
नव परिणीता नारीसी, लज्जा से झाँका करतीं ॥

वे कहते मित्र कहो कब, यह जीवन पूना होगा ।
दो प्राणों के मिलने से, यह जीवन दूना होगा ॥

वे कहते मित्र ! कहो कब, यह यौवन दूना होता ।
जैसे बढ़ते जीवन में, यह यौवन ऊना होता ॥

शैशव कौमार्य उछलता, यौवन भी धीरे धीरे ।
यौवन के बीते आते, पतझर के दिन भी नीरे ॥

इस तरह बीत जाते हैं, हंस ने के जीवन के क्षण ।
ये बिखर न जुड़ने पाते, ऐसे कठोर हैं क्षण-कण ॥

पर भीत न होना मानव, यह जीवन वर्तन कहता ।
संघर्ष करो आगे बढ़, यह नियति-प्रवर्तन कहता ॥

तन वृद्ध बने बन जाए, मन वृद्ध न मन बनना सीखे ।
तन में सल पड़ें अनेकों, पर मन तो निर्मल दीखे ॥

पर मित्र छेड़ देते फिर, यह कैसा पत्थर का मन ।
जिसमें न कहीं दिख पाए, जीवन में दो क्षण नन्दन ॥

वे बन उदार यह कहते, दुनियां को जानों अपनी ।
संसार बने नंदन वन, कब माया अपनी तुपनी ॥

यह भेद बना है घातक, इस पर विवेक दे पहरा ।
जिसका जीवन बलता है, उसका क्षण क्षण है लहरा ॥

मैं नहीं चाहता मेरा, हो प्यार किसी बंधन में ।
हो शुभ्र चाँदनी फैली, उसके जग के प्रांगण में ॥

तुम प्यार प्यार चिल्लाते, पर कहाँ सुधा उसमें है ।
वह तो जघन्य अस्थिर है, पर कहां शांति उसमें है ॥

वह लौकिक नेह नहीं थिर, थिर धर्म प्राण जब बनता।
सामाजिक जीवन निर्मल, जब धर्म-अर्थ बन खिलता॥

इसलिए धर्म साधन को, बनती समाज की कारा।
पर धर्म सिद्ध होने पर, नर बनता सबका प्यारा॥

बढ़ते बढ़ते मानव तब, होता स्वतन्त्र जीवन में।
करता स्वतन्त्र अग जग को, हो एक लक्ष्य यौवन में॥

साथी कहते तब उनके, हो चले दार्शनिक प्यारे।
क्या भिन्न बनोगे हमसे, जगती से होगे न्यारे॥

वे कहते मित्र हमारे, सब कुछ संभव जीवन में।
वह युवक समय को देखे, बदले अपने जीवन में॥

जीवन गतिशील सदा से, जग में परिवर्तन लेखा।
पर युवक जनों को मैंने,—हिम गिरि से उन्नत देखा॥

वे निज पवित्र कर्मों से, जग के आनन को भरते।
आ जाय कहीं अवसर तो, प्राणों की बाजी धरते॥

यौवन उद्दाम वही है, जो पत्थर को दे पिघला।
जग की धारा को बदले, जग-भार करे जो हल्का॥

दे नर समाज को जीवन, मानवता को फैलाये।
जग के भूले भटकों को, जो ज्ञान-दान दे जाये॥

है वीर युवक वह सच्चा, जिसका हो बच्चा बच्चा।
जग का क्या भला करे वह, जिसका होगा दिल कच्चा॥

तब हार मानते साथी, कहते तुम ज्ञानी ध्यानी।
दुनियां तुम से बन जाये, अभिमानी औ हैरानी॥

तुम जग की आशा प्यारे, हैं कार्य अनोखे तेरे।
तेरे जीवन-दर्शन को, जगती उमंग से हेरे॥

इनके साथी सब सच्चे, इन से थे ज्ञानी मानी ।
वे कभी छेड़ते उनको, जो हिंसक बनते ज्ञानी ॥

वे कहते यदि ज्ञानी हो, तो करो विश्व को ज्ञानी ।
हिंसक बन कर के जग में, कब दिखे साधु मुनि ध्यानी ॥

तुम दिल पर पत्थर रख कर, पथराए कैसे ज्ञानी ।
ईमान नेह पर जगती, जीती यह बात न जानी ॥

जो नहीं हृदय का सच्चा, वह पाठ पढ़ाए कच्चा ।
वह ठगता फिरता जग को, जो पाखंडी का बच्चा ॥

तुम कैसे सच्चे साधू, जो धर्म-राह में कच्चे ।
बदनाम धर्म को करते, तुम निंद्य निंद्यतम टुच्चे ॥

यह देख रूप युवकों का, प्रभु अति प्रसन्न हो जाते ।
दुनियाँ की गति ये बदलें, यह उच्च भावना भाते ॥

वे कहते धन्य युवक ये, जिन में यह ज्ञान जगा है ।
ऐसे ही युवकों से तो, जग का अज्ञान भगा है ॥

ये ज्ञानी मानी ध्यानी, दिखते हैं हट्टे कट्टे ।
भगवान भला हो इन का, ये जग हितकारी पट्ठे ॥

है बाल्य ज्ञान-अर्जन को, मानव शरीर वर्धन को ।
हो जाय भक्त यह जीवन, पुरूषार्थ पुण्य नर्तन को ॥

हो जाँय जगत के बच्चे, ज्ञानी औ दिलके सच्चे ।
यौवन उनमें लहराए, जगहित में बनें न कच्चे ॥

यह ज्योति प्रज्वलित फैले, जग में प्रकाश करने को ।
हो सत्य अहिंसा मानव, जग के कल्मष धोने को ॥

यह धन्य देश वैशाली, शुभ क्षत्रिय कुंड जहाँ है ।
वह तीर्थ गंडकी पावन, जीवन ही यज्ञ जहाँ है ॥

ऋजु बाला सी ऋजु बाला, जो लिए नेह जलधारा ।
उस में विभु का अवगाहन, होता जन मन को प्यारा ॥

विभु कहते प्यारे मित्रो !, यह जीवन नेह–सरित है ।
बहता जीवन ही जीवन, यह जीवन नेह–भरित है ॥

तैराक बड़े थे विभुवर, सब हार मान जाते थे ।
जो वे कहते सब उनकी, सच बात मान जाते थे ॥

जीवन जीवंत बने तो, जीवन भी एक कला है ।
साकार कला का दर्शन, अग जग को सदा भला है ॥

रमणीय प्रकृति का दर्शन, भावों को उज्ज्वल करता ।
उनके विराग भावों से, जग कोना कोना भरता ॥

संध्या ऊषा जीवन के, दो पक्ष बताया करतीं ।
है साध्य एक जीवन का, यह लक्ष्य जताया करतीं ॥

आनंद विश्व का उपजा, विभुतन में आश्रय पाता ।
सौन्दर्य विश्व का उनकी, आँखों में प्रश्रय पाता ॥

त्रिशला के प्यारे सुत में, यौवन प्रशान्त लहराता ।
त्रय शल्य विश्व के हरता, मानव को शांत बनाता ॥

उनकी यौवन रेखा से, जग का कण कण हो दीपित ।
श्रम लक्ष्य बने जीवन में उन्नति का जग कब सीमित ॥

-: पंचम सर्ग

मस्ती में बीत रहे थे, जीवन के दिन बन सपने ।
जग जयी काम हारा था, धनुबाण लगे थे कँपने ॥

यौवन वसंत डर आया, चरणों में शरण पड़ा था ।
सब सुभट मदन के हारे, सौन्दर्य शील निखरा था ॥

अनुभव का संचय करते, उन् तीस वर्ष थे बीते ।
कब बने भलाई श्रम बिन, उनके जीवन क्षण रीते ॥

परिपक्व युवावस्था थी, था अचल धैर्य मानस में ।
अनुपम सतेज आनन था, जसे प्रकाश तामस में ॥

वन उपवन में छाया था, उस ओर वसंत मनोहर ।
पर युवक वीर के मन में, रक्षित वैराग्य धरोहर ॥

तेवीस तीर्थंकर उन को, रह रह कर याद दिलाते ।
युग पहिचानो युग-मानव, पूर्वज जीवन जतलाते ॥

पूर्वज-जीवन से सीखो, मत कोखो उनको भूलो ।
आजाय कहीं बाधा तो, अनुभव संचय से फूलो ॥

आता वसंत जब फूला, सूखे भी हरयाते हैं ।
तरुओं में शत शत नूतन, किसलय भी लहराते हैं ॥

वे देख प्रकृति-वैभव को, मन में फूले न समाते ।
जिस ओर देखते उस को, उस ओर कहीं न अघाते ॥

वे नदी तीर एकाकी, जाते वन उपवन को भी ।
मानस से सर में खिल कर, जगते विधि भावों के भी ॥

नृप का उद्यान सजा था, ये नेक अनोकह सुंदर ।
उन्मत्त भ्रमर मंडराते, गाते थे गीत मनोहर ।।

बौराते आमों पर था, कोयल कूकों का भरना ।
मानों नर युवा मदन पर, रति का किलकारी भरना ।।

भौंरों का मनहर गुंजन, माधवी लता का नर्तन ।
संगीत नृत्य का संगम, करता भावों का वर्धन ।

बेला मन में मुसकाती, चंपा फूली न समाती ।
रजनी गंधा घनतम में, यौवन का साज सजाती ।।

नर-नारी का संमेलन, प्राकृतिक स्त्रोत का झरना ।
संयम की रेखा द्वारा, अनमोल रत्न का भरना ।।

यह व्यक्त सत्य सुन्दर है, जीवन भी इतना सुन्दर ।
इस पर ही चल कर मानव, जगती में बना युगंधर ।।

शिव हो भावों का उद्गम, कल्याण विश्व का समझो ।
तुम कार्य क्षेत्र में अपना, सम श्रेय विभाजन समझो ।।

इन भावों में बह जाते, क्षण रुक रुक कर बढ जाते ।
एकांत गीत लहरी को, सुन सुन कर नहीं अघाते ।।

वे सोचा करते जग में, मानव का आना जाना ।
संसार जलधि से उतरे, जिनने जीवन पहिचाना ।।

वह जन्म-जरा से छूटा, जो नहीं विश्व में भूला ।
अस्थिर अशरण यह जीवन, उपकार मुक्ति का भूला ।।

संसार नाम माया का, माया में दुनियाँ रमती ।
मायावी दुनियाँ ही तो, जीवन के सुख को हरती ।।

संतोष बिना यह मानव, कीचड़ में फँसता जाता ।
आकंठ धसा यह प्राणी, जीवन भर उभर न पाता ।।

जाता है साथ न कुछ भी, केवल ही त्याग भला है ।
वह त्याग तपस्या सच है, जिस से सब पाप जला है ॥

नर मुट्ठी बांधे आता, जो पुण्य पाप की गठरी ।
उसको व्यय करो कमाओ, यह देह अन्त में ठठरी ॥

दुनियाँ के तब तक नाते, जब तक यह देह भला है ।
मरकर यदि अमर बनो तो, जीवन भी एक कला है ॥

यह देह अपावन अस्थिर, है हाड़ मांस का पुतला ।
कर्मों से बनता उत्तम, जिन हारे जतला जतला ॥

जब मोही बनता मानव, आते हैं कर्म अभागे ।
इनके कारण दुनियाँ के, कब भाग्य कहां हैं जागे ॥

इसलिए सदा उत्तम हो, भावों का लोक हमारा ।
हम सदा पार भी उतरें, जिससे हो वारा न्यारा ॥

दे रहे महापुरुषों के, जीवन, हम सब को शिक्षा ।
यदि भला सभी का हो तो, माँगो जीवन में भिक्षा ॥

वह भीख भली है जिससे, यह सारा विश्व सुधरता ।
वह भली दिगम्बर दीक्षा, जिस में यह देह निखरता ॥

वह ज्योति जलाओ जिससे, यह अगजग हो आलोकित ।
हों भाग सभी के जागे, कोई भी रहे न मोहित ॥

जिनने इस जग को जाना, वे पार विश्व के उतरे ।
जीवन रहस्य को जानो, नर बन जाओगे निखरे ॥

जीवन अनंत जगती का, वह कौन नहीं सुख भोगा ।
पर विना सत्य-संगम के, सुख भी तो दुख सा होगा ॥

मानव जिन धर्म बड़ा है, कल्याण विश्व का इससे ।
वह बनता महापुरुष है, जो आत्मधर्म को परखे ॥

इतिहास विश्व का कहता, जिसने इसको परखा है ।
वह निर्भय महा मनुज है, युग हाथों का चरखा है ॥

मैं आत्मधर्म मानव को, दे कर कल्याण करूंगा ।
तारूंगा स्वयं तरुंगा, हिंसा को दूर करुंगा ॥

युग उनको चाह रहा था, वे युग को चाह रहे थे ।
उनके अन्तर्दर्शन से, युग-कल्मष भाग रहे थे ॥

वह युवक वीर बनता है, जो युग का कल्मष धोता ।
जिसका युग अपना होता, जिससे युग बदला होता ॥

वे युग की सब बातों पर, करते विचार दृढता से ।
भूलों को राह बताते, रहते सुदूर विभुता से ॥

विभु का यौवन पावन था, जिसमें मोती सा पानी ।
कुंडलपुर नगर हरा था, उनसे थी पुण्य कहानीं ॥

विभु के यौवन सौरभ की, परिमल फैली अगजग में ।
कन्याएं चाह रहीं थी, उनको बांधे बंधन में ॥

कन्या-जन-मात-पिता थे, उत्सुक संबंध निभाने ।
गणराज सभी अभिलाषी, निज निज को धन्य मनाने ॥

जन पद कौशल मागध में, सब ओर चाह इनकी थी ।
मैं जग-हित बनूं विरागी, बस एक राह इनकी थी ॥

इसलिए न इन से कोई, कर पाता सहसा बातें ।
जो सुनते घबरा जाते, इस ओर न चलती घातें ॥

सिध्दार्थ हुए उत्कंठित, अपने कुमार से बोले ।
यौवन तुम में लहराया, तुम बने हुए हो भोले ॥

आते सम्बन्ध अनेकों, तुम चाहो जिसको वरलो ।
अपने सुयोग्य कन्या को, तुम प्रेम अभय का वरदो ॥

चाहे चित्रों से चुन लो, या स्वयं बुद्धि से सोचो ।
अपनी यौवन रेखा का, तुम मूल्य विश्व में लेखो ॥

मैं चाह रहा महलों की, हो शोभा पुत्र-वधू से ।
घरघर में उत्सव छाएं, गृह लक्ष्मी पुत्र-वधू से ॥

मेरा घर भी हो गुंजित, संतानों की चहकन से ।
मेरी छाती हो ठंडी, उनके ही आलिंगन से ॥

राज्यभिषेक हो दोनों, हों शासन के अधिकारी ।
यह जनता चाह रही है, है जनता मुझको प्यारी ॥

साकार स्वप्न कर मेरे, हो वंश-चक्र का चलना ।
माँ की ममता को खलता, तेरा अविवाहित बलना ॥

मन चाही कन्या वर लो, हों धर्म सहायक तेरी ।
भारत कन्या होती है, पति के चरणों की चेरी ॥

मानव समाज की सेवा, इन दोनों से होती है ।
नर-नारी के बन्धन से, जगती कालिख धोती है ॥

बोले कुमार उत्तर में, चरणों में शीश झुका कर ।
मेरा भी नम्र निवेदन, है विज्ञ जनक करुणाकर ॥

जो कहा आपने माना, उसमें मुझ को गुनना है ।
मानव समाज की सेवा-को जन्म हुआ अपना है ॥

वे सभी मोह की बातें, जो आप मुझे कहते हैं ।
पर समझदार दुनियाँ के, अनुभव का रस लेते हैं ॥

मैं निर्बंधन बन करके, बन चलूं प्रेम का दानी ।
हो विश्व प्रेम में पगती, दुनियाँ की आनाकानी ॥

छा रही फूट है देखो, हिंसा भी फूल रही है ।
कल्याणी सत्य अहिंसा-, को दुनियां भूल रही है ॥

बन रहे कसाई खाने, ये धर्मनाम पर मंदिर ।
निर्दय बन नर में पशु हो, जाते यज्ञों के अन्दर ॥

क्या इन सबसे मैं अपनी, आंखों को मींच सकूंगा ।
कब सत्य अहिंसा पथ पर, मैं जग को खींच सकूंगा ॥

परिवार मिटे जग हित में, इस से बढ़कर क्या होगा ।
यह वंश अमर भी होगा, यह कुल भी उज्ज्वल होगा ॥

गणराज्य आप से निर्मल, सन्देश विश्व में फैले ।
गणराज्य विश्व बन जाए, जग सुर-बालक सा खेले ॥

जब विश्व भलाई में मैं, जग वैभव ठुकरा दूंगा ।
सिध्दार्थ और त्रिशला का, तब पुत्र दुलारा हूँगा ॥

तुम विश्व पिता माता की, पदवी सहसा पाओगे ।
युग युग तक इस वसुधा पर, आदर्श बना जाओगे ॥

वह मानव सच्चा मानव, जो जगहित में मरता है ।
जो चेतन कर्मठ बन कर, युग-गति परखा करता है ॥

मैं एकाकी बनकर के, एकाकी योग जगा दूं ।
नर को नारी को सबको, उनका गौरव जतला दूं ॥

सिध्दार्थ हुए तब मौनी, सुन कर कुमार का उत्तर ।
वे हार गये थे सुत से, सुत था उनका ही अनुचर ॥

छाये प्रमोद के दुख के, आंखों में बादल कारे ।
आकर विवेक ने बोला, हैं वीर विश्व से न्यारे ॥

त्रिशला से बोले जाकर, तुम निज सुत को समझाओ ।
हो सके तो योगि-पथ से, उनको विचलित करवाओ ॥

"अच्छा देखो दो क्षण में, मैं उसको विचलित करदूं ।
माँ की ममता के आगे, पत्थर को भी हिम करदूं ॥

दिल पर पत्थर रख करके, चल पड़ी पुत्र के आगे।
पर हुई दशा ऐसी थी, ज्यों प्राण पखेरु भागे ॥

लख दीन दशा माता की, सन्मति बोले घबराये।
मां दशा आज यह कैसी, क्या वंश-देव पथराये ॥

रख धैर्य युगल दृग पोंछे, बोली त्रिशला हे प्यारे।
नारी छाया से बचकर, क्यों नर बनते हो न्यारे ॥

नारी होगी सहयोगिन, जो होगी तेरी दुलहिन।
सूने घर को भरदे वह, हो अंत समय में योगिन ॥

मैं हूँ नारी मैंने ही, तुम को तो जन्म दिया है।
फिर भी माँ की ममता को, पथराया हुआ हिया है ॥

वह कौन संत दुनिया का, जिसने माँ को ठुकराया।
मैं देख रही निज सुत को, जो जग-हित में बौराया ॥

जो भाग्य लिखा जीवों के, क्या उसको मिटा सकोगे।
क्या पूर्व जन्म करनी के, फल को भी हटा सकोगे ॥

हैं सब स्वतंत्र परिवर्तन, सिध्दान्त अतीव अटल है।
प्राकृतिक नियम को टाले, ऐसा भी कहीं सबल है ॥

मां का अधिकार यही है, निज पुत्र बधू मुख देखे।
हो हरा भरा-घर आंगन, शुभ सास बनी सुख देखे ॥

निष्ठुर बन युवा विरागी, क्या न्याय यही कहता है।
छोड़ो माँ को बिलखाती, क्या धर्म यही कहता है ॥

तुम धर्म राह में कच्चे, हो इसीलिए तो बच्चे।
मैं पाठ पढ़ाऊं सच्चे, तुम बनो न दिल के कच्चे ॥

सामाजिक धर्म यही है, मेरे कहने को मानो।
माँ की निस्सीम व्यथा को, हो विज्ञ स्वयं पहचानो ॥

तब प्यार भरी बोली में, बोले माँ ! माँ!! चिल्लाते ।
गोदी में निज शिर रखकर, रो बोले अश्रु बहाते ॥

मैं जैसा तेरा बच्चा, वैसा सारा जग बच्चा ।
माँ का सब प्यार लुटा दो, यह धर्म-पंथ है सच्चा ॥

जैसे मानव के बच्चे, वैसे पशु पक्षी बच्चे ।
उनके हिंसक बनते हैं, ये तेरे भोले बच्चे ॥

मैं बनूं तुम्हारा सच्चा, बच्चा जब करलूं रक्षा ।
मैं बना फिरूंगा वर्णी, माँगूं पापों की भिक्षा ॥

मैं मुक्तिरमा पति हूंगा, जिस से दुनियाँ हेरानी ।
हो विश्व हितंकर बनते, भावों की बनती रानी ॥

वह दया विश्व में छाए, बन कर प्राची की लाली ।
सब हृदय कमल खिल जाएं, हों कहीं न रेखा काली ॥

देखो अशांति छाई है, छाई है विषम विषमता ।
हिंसा पर चलते मानव, सब भूल गऐ हैं समता ॥

इसलिए चाहता हूँ मैं, सामाजिक क्राँति जगाना ।
जो धर्म-राहभूले हैं, उनको रहस्य समझाना ॥

कर्तव्य विना पालन के, विन संयम आराधन के ।
विन अटल हुए निज पथ के, कब भाग्य जगे मानव के ॥

माँ नारी है अति पावन, सीता राजुल सी नारी ।
मैं बना अकेला योगी, सींचूं समाज की क्यारी ॥

बस यही भावना मेरी, इस पर मुझको चलना है ।
दीपक की लौ सा मुझको, जीवन भर ही जलना है ॥

मानव निज भाग्य विधाता, वह सब कुछ कर सकता है ।
चाहे तो इस दुनियाँ में, नव स्वर्ग बसा सकता है ॥

पानी में आग लगा दे, नभ में उद्यान खिला दे।
सूखी डाली हर पत्ती, जब चाहे जिसे जिला दे॥

मानव ही देव बना है, तप-त्याग-साध में बलता।
नर-वंश हुआ पावन है, बसुधा के हित में जलता॥

माँ मुझको शुभ आशिष दो, मैं निर्भय योग जगाऊं।
दुनियाँ पर छाये तम को, मैं ज्ञान किरण से ढाऊं॥

बंध गया धैर्य मानस में, त्रिशला ने गले लगाया।
शिर सूंघा मुख को चूमा, कल्याण करे विधि चाहा॥

तुम सच्चे कुल के दीपक, तुम अमर बनो जगतारे।
मां की ममता कल्याणी, आंखों के तारे प्यारे॥

तुम चलो भलाई पथ पर, मैं रोक नहीं सकती हूँ।
मैं दुखियारी हो कर भी, हा टोक नहीं सकती हूँ॥

जग हित में व्रती बने हो, उसमें न कभी तुम चिगना।
लग जाय प्राण की बाजी, पर नहीं धर्म से डिगना॥

ज्यों वृत्त मिला चेटक को, नृप बिम्बसार भी आए।
राजा से बोले सादर, वे कहाँ नेत्र मन भाए॥

आये कुमार आदर दे, थे खड़े नेत्र कर नीचे।
राजा चेटक-रानी ने, तब प्रेम-अश्रु थे सींचे॥

बोले कुमार से धीमें, यह कैसा योग जगाया।
क्या राजपुत्र की होती लायक बिराग के काया॥

तुम जौबन-जोग जगाओ, हम राज्य करेंगे भोगा।
परिणाम प्रजा के मन में, सोचा इसका क्या होगा॥

चंदना सुशीला बोलीं, ये भैया कितने भोले।
ये नहीं चाहते मेरी, भाभी आ मुझसे बोलो॥

बोले कुमार सकुचाते, हैं पूज्य सभी क्या बोलूं ।
पर बाध्य हुआ उत्तर में, मैं अपने मुख को खोलूं ॥

मेरे भावों ने, युगने, मुझको यह मार्ग सुझाया ।
होगी पवित्र कल्याणी, मुझ से दुनियां की माया ॥

भूली जनता पथराई, पार्थिव बनती जाती है ।
इसलिए विश्व कल्याणी, मन कली खिल जाती है ॥

हैं आप सगे संबन्धी, हित पथ में योग दिलाना ।
जनता वैसी बन जाती, जैसा हो दीप जलाना ॥

हे बहिन मुझे आशा है,
तुम भी शुभ आशिष देना ।
भोले भैया के पथ में,
तुम हित चिन्तक बन रहना ॥

-: छटा सर्ग :-

राजकुमार विरागी होंगे, फैली घरघर चर्चा ।
धन्य देव सिध्दार्थ जिन्हों की, करते हैं सुर अर्चा ॥

धन्य देश वैशाली जिस में, क्षत्रिय कुंड हरा है ।
धन्य कुमार हमारे जिन से, वसुधा रत्न धरा है ॥

धन्य हमारी त्रिशला रानी, जिनका सुत प्यारा है ।
नर-नारी-बालक-बाला की, आँखों का तारा है ॥

बच्चों बच्चों को शिक्षा दे, इन ने ज्ञान जगाया ।
आत्म और परमात्म तत्व का, सच्चा भान कराया ॥

सच्चा शील जगाया इन में, इन को धर्म बताया ।
समाजिक कर्त्तव्य सिखाकर, कर्म-सुमार्ग दिखाया ॥

हम इन को सच्चा ही अपना, नेता मान चुके है ।
हों कुमार राजा सहयोगी, यह ही ठान चुके हैं ॥

जनता ने मिल कर राजा से, किया निवेदन जाकर ।
राजकुमार बने क्यों योगी, हो राजा करुणाकर ॥

आप सरीखे धन्य सुराजा, जिन से वंश सुशीतल ।
वर्धमान से वीर कहाँ हैं, देखा विश्व महीतल ॥

वयोवृध्द हैं आप आप के, होंगे ये सहकारी ।
कार्य करेंगे वे जो होंगे, सब के ही हितकारी ॥

समता भाव जगाया सब में, करूणा से मन पूरा ।
हिंसा का साम्राज्य उठाने, किया न काम अधूरा ॥

राजा ने समझाया सब को, कहना सत्य तुम्हारा ।
मैं हारा रानी भी हारीं, पर इन का मन न्यारा ॥

राजकुमार विनय से जोड़े, हाथ खड़े थे आगे ।
"साथ आपके बने विश्व हित," बोले जग-दुख भागे ॥

स्वार्थ न सोचो जग हित सोचो, आप बनों बड़भागी ।
मुझ पर करो कृपा की कोरें, मैं बन जाऊँ त्यागी ॥

सदा जलाया दीप करूंगा, जिससे पाप भगेंगे ।
दीन दुखी निर्बल पापी के सब के भाग जगेंगे ॥

पूज्य पिता जी इस वय में भी, काम युवक का करते ।
और प्रजा के हित-चिन्तन में, रातों जागा करते ॥

मैं भी योग जगाऊंगा वह, जिस में ज्योति भरी हो ।
मैं भी रोग भगाऊंगा सब, जिस से भूमि हरी हो ॥

धन्य कुमार बनो तुम योगी, जनता प्रमुदित बोली ।
राज पुत्र की सविनय बानी, जनता ने भी तोली ॥

जो दिन प्रभु ने चुना योग का. उस दिन हलचल फैली ।
लुटा रहे घर घर के राजा, स्वर्णों की शत थैली ॥

राज महल बन गया नगर था, तीन लोक का आकर ।
तीन लोक भी धन्य हुए थे, इस उत्सव को पा कर ॥

लौकान्तिक देवों ने आकर, उन का साज सजाया ।
अर्चन कर उनके विराग के, भावों को सहलाया ॥

राजद्वार पर मंगल गायन, सब के मन भावन थे ।
जनता के बच्चे बच्चे के, मन भी अतिपावन थे ॥

मंगल टीका किया मात ने, शुभ अशिष के संग में ।
सब का मन भी मस्त हुआ था, जैन धर्म के रंग में ॥

चंद्रकांत सी निर्मल पावन, बनी पालकी न्यारी।
जिस पर बैठे तीर्थ-प्रणेता, शोभा अद्भुत प्यारी॥

बड़ी साथ में भीड़ भाड़ थी, होता था जय कार।
मिथ्यातम ने मानी थी तब, अपनी अद्भुत हार॥

बाजों के गुंजन के रव से, जोर शोर से रोता।
तम भी युग युग के कालिख को, उन चरणों में धोता॥

पग पग पर उत्सव होते थे, मंगल कलश रखे थे।
सुर-बालाओं के हस्तों में, लाजा पुष्प भरे थे॥

बिखरे पुष्पों के छल से सच, काम देव चरणों में।
पथ-पथ पर बिछता जाता है, गूंजी जय कर्णों में॥

भाते थे वैराग्य भावना, बढ़ते ही जाते थे॥
पथ पथ चरणों पर नर नारी, पड़ते ही जाते थे॥

त्रय विंशति तीर्थों की गाथा, सब के मन भाई थी।
"जय सन्मति जय वर्द्धमान" की, ध्वनि नभ में छाई थी॥

मुक्ति-रमा हित यह वन यात्रा, खंका वन में आई।
सायं छल से मुक्ति-रमा की, राग लालिमा छाई॥

खंका वन की उस सुषमा का, चित्र खींचने वाला।
मिला न मानव में देवों में, था विरंचि-मुख काला॥

चद्र कान्त की गोल शिला पर, विभू ने आसन धारा।
वर्तुल पृथ्वी धन्य हुई थी, धन्य चन्द्र बेचारा॥

कर ईशान दिशा में मुख को, विभु दृढ़ता से बोले।
सर्व परिग्रह त्याग करूँगा, मन के बधन खोले॥

मन को वचन काय को वश में, करके योग धरूँगा।
क्रिया अहिंसक पूरी होगी, भव-भव रोग हरूँगा॥

"णमो कार" का पाठ करो सब, ध्यान धरो दो त्तण को।
मैं भी जिन-मुनि धर्म धार कर, पूर्ण करुंगा प्राण को॥

विध्न विनाशक मंत्र ध्यान धर, सब ने मौन लिया था।
"ओं णमों सिद्धाणं" कह कर, प्रभु ने योग लिया था॥

जय जय कार हुए वसुधा में, नभ भी मुखरित बोला।
नयन सामने सब ने देखा, विभु का बदला चोला॥

मार्ग शीर्ष का असित पत्त भी, धन्य हुआ प्रभु पाकर।
सफल हुई थी दसवीं तिथि भी इन्द्रिय विजयी पाकर॥

धन्य दिगम्बर दीत्ता कहती, जनता लौटी वन से।
जिन-मुनि-तीर्थ और सन्मति भी, कभी न हटते पथ से॥

त्तत्रिय कुंड बना कुंडलपुर, विभु ने कुंडल त्यागे।
उसी समय से मोही बंधन, दुनियाँ से झट भागे॥

भूमि भयानक रात भयानक, दांतों काट रही थी।
किन्तु वीर के मौन ध्यान से, भयदा काँप रही थी॥

जोरों की थी ठंड किन्तु विभु; ध्यान अग्नि बलती थी।
हिंस्र जतु आ पास बैठते, दीप-शिखा जलती थी॥

हुआ प्रभात सूर्य ने आकर किरण-ताज पहिनाया।
महवीर के वदन कंज ने, मानस कमल हराया॥

कुल ग्राम नगरी में विभु की, प्रथम पारणा हितकर।
कुल-भूपाल हुआ जगती में, अद्वितीय पुण्याकर॥

पंचाश्चर्य हुए राजा घर, वसुधा में यश फैला।
पुण्य दिखाया करते हैं सच, इस दुनियाँ में खेला॥

महावीर वन-वन में निर्भय, कठिन तपस्या करते।
जहाँ देखते कानन-सुषमा, उस में भी वे रमते॥

जहाँ पहुंचते वह वन बनता, सुन्दर नन्दन-कानन ।
किसे न प्यारा अपना लगता, सुन्दर नन्दन-आनन ॥

हरी भरी भू लगती प्यारी, नयन थकावट मिटती ।
यदि हरीतिमा पर रम जावें, अक्षि-अंधता हटती ॥

उन्हें देख कर बैर छोड़ कर, पशु पक्षी सब आते ।
अपने संग संगाती लाते, शांति अनोखी पाते ॥

होता था यह अजब अजायबघर दुनियाँ है-रानी ।
महावीर की साम्य भावना, लख प्रतिभा बौरानी ॥

आँख खोल कर धीरे धीरे, फूँक फूँक कर चलते ।
जहाँ सूर्य थमते चल चल कर, नहीं वीर भी हिलते ॥

दोनों का था मेल इसी से, खार चंद्रमा खाना ।
रात रात भर रोते रोते, पीला था पड़ जाता ॥

शीत और हेमंत हारते, दोनों चुपके सोते ।
अपनी देख विफलता विभु से, चुपके चुपके रोते ॥

वृक्ष लताओं से झड़ते हैं, पत्ते पतझर आते ।
पुण्य क्षीण होने पर प्राणी, दुख कर दिन ही आते ॥

सुख दुख में जो तप तपता है, अविनश्वर सुख पाता ।
यही सोच कर महावीर का, भाव योग बढ़ जाता ॥

जब वसंत आता लहराता, वन उपवन हरयाते ।
कच्चे योगी के मन के भी, भाव कहीं रम जाते ॥

कोयल मौरों पर बौराती, मन में हूँ के भरती ।
राग-भावना महर महर कर, दिल के टू के करती ॥

किन्तु वीर के मन में यौवन, योग हितार्थ जगा था ।
इसीलिए मधु ऋतु आने से, स्थिर कर्मार्थ जगा था ॥

द्वारा कामदेव पद्मों में, पड़ कर सेवा करता ।
जहां देव आते चरणों में सुभ छल झूमा करता ।।

कभी वन पर्वत शिखरों पर, कठिन योग को धरते ।
सोने सी अपनी काया को, जिन से निर्मल करते ।।

कभी प्रचंड पवन-झोकों को, सहते धीरज धरते ।
बादल कड़के बिजली तड़के, फिर भी ओठ न फड़के ।।

वर्षा स्वर्गंगा बन करके, उनका न्हवन कराती ।
मुक्ति रमा भी झाँक झाँक कर, बार बार इठलाती ।।

कभी विंध्य में काली रातें, उनने अभय बिताईं ।
बाघ और चीतों के वन में, वीरकीर्ति भी छाई ।।

देश देश में निर्भय फिरते, परीषहों को सहते ।
अन्न पान में ज्ञान-ध्यान में, योगों को वश करते ।।

सभी विश्व के कष्टों की जब, पूर्ण परीक्षा हारी ।
दानव देवों की भी मिलकर, हुई पूर्ण तैयारी ।।

उज्जयिनी के अतिमुक्तक वे, जब मसान में आये ।
प्रतिमा योग वीर ने धारा, रुद्र यहां टकराये ।।

किया भयंकर नाद रुद्रने, रात घनी कर डाली ।
ओले पत्थर शिल जल धारा, से पृथ्वी भरडालीं ।।

बादल गरज रहे थे क्षण क्षण, बिजली चमक रहीं थी ।
तारे बज्र टूटते नभ से, नगरी दहल रही थी ।।

कभी सिंह का घन गर्जन था, कभी करी चिंघाड़ें ।
ठाँ ठाँ शोर मचा नभ भेदी, ज्यों जब पड़ते धाड़े ।।

कभी उगलता आग वीर पर, कभी नाग बन आता ।
कभी नाक में कभी कान में, दिखता आता जाता ।।

कभीं उगलता विष जहरीला, कंठ लपेट लगाता ।
कभी करी बन सूंड घुमाता, उन पर झपटा आता ॥

कभी प्रभंजन ऐसा चलता, तीन लोक थर्राता ।
शिखर अनोकह और महल ज्यों, ढा जाता अर्राता ॥

कभी भयंकर भीलों की बन, सेना छा जाताथा ।
कभी महा भारत का भीषण, कांड रचा जाता था ॥

कभी रचाता चक्र व्यूह था, रुण्ड मुण्ड टकराता ।
कभी डाकिनी कभी व्यालिनी, सुरबाला नचवाता ॥

उज्जयिनी की जनता भी थी, देख दृश्य भय खाती ।
प्राण टूटते बंध घटते, किन्तु हुई इतराती ॥

हार गया जब महावीर से, चरणों में झट आया ।
बोला, ऐसा वीर न देखा, नहीं सुभट भी पाया ॥

क्षमा करो हे योगिराज अब, मैं था सच पथराया ।
इसी लिए मैं हार हार कर, बार बार बौराया ॥

सर्प राज बन वीरराज का, छत्र बना तब बैठा ।
प्रात समय में भीड़ लगी जब, फिर भी वह था हेठा ॥

सर्पराज हट गया अचानक, रूद्र वहाँ पर आया ।
देख अनोखा परिवर्तन यह, जनता ने भय खाया ॥

बोला रुद्र न इनसा मैंने, योगिराज है पाया ।
भय विजयी हैं काम जयी हैं, लोकात्तर है काया ॥

नगर नगर में ग्राम ग्राम में, फैल गई यह गाथा ।
जो आता श्रद्धा से उसका, झुक जाता था माथा ॥

ज्यों उपसर्ग हटा विभु ने भी, योग ध्यान को तोड़ा ।
यश अभिलाषा से उन्मुख हो, नगरी से मुंह मोड़ा ॥

देश देश में यात्रा योगी, विभुने ज्योति जगाई ।
फैली अंध अंधता प्रभुने, मन से शीघ्र भगाई ॥

किया प्रभूने अनुभव-संचय, मौन योग व्रत धारे ।
दे दे कष्ट उन्हें सब हारे, दुनियाँ के हत्यारे ॥

रवि विभाग संवत्सर का कर, दो अयनों में चलते ।
महावीर भी लौट पड़े तब, जन्म भूमि में रमते ॥

धन्य हुई कौशाम्बी आये, महावीर से भिक्षुक ।
मैं दासी कैसे भोजन दूं, सती चंदना उत्सुक ॥

कभी बनी वह राजपुत्रिका, खेल रही थी वन में ।
जगी वासना किसी यक्ष के, ले भागा वह नभ में ॥

ज्यों ही निज रमणी को देखा, छोड़ा सभय वनी में ।
किसी भीलने वृषभदत्त को, बेचा कौशाम्बी में ॥

सेठानी थी दुष्ट सुभद्रा, चांडालिन थी मन की ।
मुख पर लगी मुद्रिका रहती, पर दुष्टा थी तनकी ॥

दैवयोग से बनी चंदना, दासी सेठानी की ।
रूपराशि से हुई दृष्टि थी, रूठी सेठानी की ॥

मिट्टी के बर्तन में कोदों, काँजी मिश्रित मिलता ।
इतने पर भी उसका जीवन, सांकल में बंध कटता ॥

कपड़े मैले और कुचैले, उसका तन ढंकते थे ।
कारा में रहने से उनके, दिन दुख में कटते थे ॥

बनी पिशाचिन जैसी बाला, अपमानित बेचारी ।
सहनशीलता के आगे पर, सेठानी थी हारी ॥

सदा ध्यान करती जिनवर का, दास नहीं मन उसका ।
महावीर के चरणों में रत, रहता क्षण क्षण उसका ॥

लेने को आहार वीर ज्यों, निकले दरवाजे से ।
सांकल के बन्धन सब टूटे, बाजे ज्यों बाजे से ॥

रति से सुन्दर बनी चंदना, पात्र बना सोने का ।
कोद्रव भात सुगंधित तंदुल, तृण तृण था सोने का ॥

सती चंदना ने पड़गाहा, भक्ति हुई थी पूरी ।
जिन नर भक्ति सदा करती है, मन की इच्छा पूरी ॥

चरणों में नत हुए सेठजी, सेठानी घबराई ।
श्रद्धा के दो फूल चढ़ाकर, करनी पर पछताई ॥

मैंने पाप किये जो उनपर, करो कृपा की कोरें ।
धर्म रहस्य हमें दो समझा, कल्मष बंधन तोरें ॥

मौन भाव से सब समझाया, जो समझाना उनको ।
कब समझाना सच पड़ता है, जिन पर बीतीं उनको ॥

बालक बालक इसी बात की, चर्चा करता फिरता ।
महावीर का यश मलयागिर, जी को ठंडा करता ॥

आते थे वरदान माँगने, इस जग के बहुतेरे ।
किन्तु वीर थे टाला करते, पद पद पर हंस हंसके ॥

चेटक को संदेश मिला ज्यों, आया बदला लेने ।
महावीर की शांतिमूर्ति लख, शांत बना सब सहने ॥

सेठ और सेठानी ने भी, क्षमा मांग ली उनसे ।
महावीर के पथ में आकर, मिले न कौन गले से ॥

आये लौट देश में निज के, भाग्य जगा अब जगका ।
महावीर ने पथ भी पकड़ा, स्थिर एकाकी तपका ॥

-: सप्तम सर्ग :-

यात्रा का बनवास पूर्ण कर, वीर बने थे राम ।
फिर भी पूर्ण नहीं क्या होंगे, इस जीवन के काम ॥

पथ कठोर था महावीर का, देह हुई कृश भारी ।
किन्तु वीर कब पीठ दिखाते, किये युद्ध तैयारी ॥

जितनी इच्छाएं कम होती, उतना चित्त निखरता ।
जितनी गर्मी बढ़ जाती है, उतना पित्त उभरता ॥

राम लड़े रावण से पाई, सीता जग की माई ।
सन्मति भी सच पा जाएंगे, मुक्ति रमा सुखदाई ॥

कर्म बड़े रावण से बैरी, बांधक बनकर बैठे ।
रूठ गए वे ऐसे जैसे, रूठ गए हों जेठे ॥

कर्म यहां दुनियां के रावण, राम आत्मा हितकर ।
अपना राम जगाता जो वह, कर्म काटता दुख कर ॥

यही सोचते तप में रमते, आए जृम्भिक ग्राम ।
ऋजु बाला का बना मनोहर, वन सबका सुखधाम ॥
बीती बात याद हुई थी, त्रिभुवर को लहरातीं ।
इस के जीवन से पाई थीं, जीवन किरणें मातीं ॥

देख वीर को ऋजुबाला का, सहसा मन लहराया ।
हुई तरंगित उद्वेलित भी, धन्य हुई वनकाया ॥

आनंदित लख ऋजुबाला को, वन-श्री भी हरषाई ।
जामुन-आम-वंश लहराए, पिप्पल-श्री चपलाई ॥

दिन मध्याह्न हुआ था फिर भी, प्रात समय की शोभा ।
कल किलोल करते कलरव थे, फूटे भूसे गोभा ॥

हुआ सुगंधित कण कण भीना, हरयाली थी छाई ।
ग्रीष्म ताप को कम करने को, मेघ पंक्ति बौराई ॥

मोर मोरिनी लगे नाचने, केकारव भी गूंजा ।
हिरन गवय गोरैया हर्षित, नंदित विश्व समूचा ॥

वन के हिंसक जीव अभय थे, मीन मकर आनंदित ।
करुणा का सद्भाव जगा था, प्रस्तर भी था स्पंदित ॥

ऋजुबाला के आसपास में, शाल वृक्ष सीधापन ।
विभु के आगे बता रहा था, अपना हंत बड़प्पन ॥

शालावृक्ष के पास शिला भी, धारे थी गोलाई ।
होता ज्ञात वहां ऐसा था, शिला भूमि बन आई ॥

क्षमा नाम पृथ्वी का वे भी, क्षमा-धर्म-धारक थे ।
इसीलिए वसुधा के बनकर, वसुधा के पालक थे ॥

सिद्धासन को धार वीर भी बैठे निर्मल होकर ।
जला जोर की योग वह्नि को, मन का सब कुछ खोकर ॥

मोहराज भी क्रोधित आए, निज सेना ले सत्वर ।
विश्व विलास हुए एकत्रित, मन को करने गत्वर ॥

कहीं हास की कहीं राग की, कहीं घृणा की लीला ।
कहीं शोक की कहीं भीति की, कहीं ग्लानि की मीला ॥

कहीं नपुंसक कहीं पुरुष या, कहीं रमा वेदोदय ।
मोह सोचता था पाऊंगा, धीरवीर-विजयोजय ॥

ज्ञानदर्शनावरण दौड़कर, अंध तमस बन आए ।
अंतराय चतुरंगिणि सेना,-के पूरक बन धाए ॥

देख दशा यह मोहराज की, प्रभुने काय सम्हाला ।
बना शील का कवच योग के,—बह्निबाण को मारा ॥

सप्तम योग दशा से बढ़कर, बारहवीं पर जाकर ।
बह्निबाण से कर्म जला कर, पाया ज्ञान सुखाकर ॥

बने गुणा कर वीर राज भी, अरि काजय कर डाला ।
कौन वीर दुनियाँ का ऐसा, इनसा हिम्मतवाला ॥

हुए वीर सर्वज्ञ हितंकर, हुआ ज्ञान तत्वों का ।
त्रैकालिक था ज्ञान नष्ट हो, मिथ्या मत सत्वों का ॥

यह वैशाख सुदी दसमी दिन, जिस दिन ज्ञान जगा था ।
दुनियाँ के कोने कोने से, मिथ्या ज्ञान भगा था ॥

नभ से कल्प-सुमन की वर्षा, नभ का निर्मल होना ।
अद्भुत सिंह नाद दुन्दुभि रव, गन्धोदक का झरना ॥

वही सुगन्ध बयार पक्षियों,—के कलर व भाये थे ।
बिना बैर के लगते ऐसे, एक मात जाये थे ॥

छह ऋतु छाई बनी भूमि थी, सुन्दर काच समान ।
हुई सार्थिका तब से वसुधा, जब से प्रभुजयवान ॥

इन्द्रों में शत उत्सव छाए, देव हुए उत्कंठित ।
कुबेरादि देवों ने मिलकर, की थी सभा प्रपंचित ॥

बनी सभा रत्नों की क्यारी, मानस्तंभ सुशोभित ।
गन्ध कुटी के मणि सिंहासन,—पर थे वीर प्रशंसित ॥

चतुरंगुल थे अन्तरीक्ष वे, जयलक्ष्मी ठुकराते ।
अभुद् मणि मय कमल मध्य में, विभु भी शोभा पाते ॥

वीर चक्रयुक्त पलक पतन बिन, दिव्य तेज धारी थे ।
धर्म चक्रयुत धर्म सभा के, वसु मंगल प्यारे थे ॥

वसुमंगल कहता था जीवो, कर्माष्टक को जारो ।
महावीर के भक्त बनो तुम, रत्न त्रय को धारो ॥

धर्म सभा के आगे रहता, धर्म चक्र बतलाता ।
धर्म नींव पर दुनियाँ जीती, धर्म सदा सुखदाता ॥

वीर पार्श्व में था अशोक तरु, सब का शोक भगाता ।
तीन लोक के राजा प्रभु है, छत्रत्रय बतलाता ॥

विभु पर काम पुष्प की वर्षा, करता ललचाता था ।
रंग बिरंगे पुष्प दिखा कर, जग मन ललचाता था ॥

वीर पृष्ठ के पीछे सुन्दर, भामंडल जगमग था ।
जो चाहे अपने भव देखे, प्रतिबिम्बित अगजग था ॥

चौंसठ चँवर विकंपित चौंसठ,-कला राजि बतलाते ।
इन में पड़ कर जीव विश्व के, रहते हैं इतराते ॥

धर्म सभा के बाहर कोठे, देख नयन थम जाते ।
चारों गति के जीव .उमगते, धार मित्रता आते ॥

आये इन्द्र और इन्द्राणी, निज परिवार समेत ।
जय जय कार गगन में गूँजा, बोले भक्ति उपेत ॥

"जय सन्मति जय वर्द्धमान,' हे वीर विश्व के त्राता ।
तेरी शरण जीव जो आता, वह निर्भय बन जाता ॥

भरत देश के तुम अंतिम हो, तीर्थंकर सुखदाता ।
जगपालक हो जगन्नाथ हो, महाध्यान के ध्याता ॥

तेरा तीर्थ परम पावन है, जग कलंक को धोता ।
कौन जीव जो तुम्हें प्राप्त कर, तेरे तुल्य न होता ॥

तुम अनंत गुण के नायक हो, पापपुंज के जेता ।
पापी तेरे चरणों में आ, अभय प्राप्त कर लेता ॥

सब देवों में श्रेष्ठ देव हो, सत्य अहिंसा धारी।
इन्द्रिय विजयी मयाव्रती हो, हिंसा तुम से हारी॥

हे जगशिक्षक, विश्ववंद्य विभु, हे करुणा-धन धारी।
नर हो या पशु पक्षी तुम को, सब की काया प्यारी॥

हे जिन व्रती परम हित कारी, परम मोक्ष के दाता।
तेरा उपदेशामृत पीते, जन्म जरा नश जाता॥

केवलज्ञान प्राप्तकर तुमने, अर्हन् सुपदको पाया।
धन्य प्रथम परमेष्ठी बनकर, जग अज्ञान नशाया॥

परम पूत हो काम जयी हो, लक्ष्मीद्वय के स्वामी।
सुर नर योगी किन्नर गाते, जय हो वीर अकामी॥

परमानंद सिद्धिधारक हो, मोहजयी अविकारी।
ऐसे वीर न पाओगे क्यों, मुक्ति रमा सी नारी॥

सहे परीषह घोर किया तप, हे रत्नत्रय धारी।
अन्तर्नयन हमारे खोलो, बनें धर्म के धारी॥

हे गंभीर अचल धृति धारी, विश्व विहारी देव।
कर्म सुभट तुम से भय खाते, दूर रहे स्वयमेव॥

प्रतिभाशाली तत्वप्रकाशक, पाप पुण्य संहर्ता।
कर्तामत से दूर बने तुम, फिर भी पर हितकर्ता॥

हितमित भाषी पुण्य प्रकाशी, मुक्तिरमा के स्वामी।
वीतराग अध्यात्म रसिक तुम, तुम सच्चे हो नामी॥

बाल-ब्रह्मचारी वैरागी, जग उन्नायक नेता।
तुम सच्चे हो तुम से सच्चो, यह जग शिक्षा लेता॥

देख प्रतापी तेजस्वी विभु, सूर्य शरण में आया।
अपनी सच्ची राग-लालिमा, से भू को हर्षाया॥

विभुचरणों में हुआ नम्र विभु, सांझ दौडती आई ।
कल-निनाद पशु पक्षी दौड़े, नेह रीति सरसाई ॥

शेष रहे ये अज्ञानी भी, मिथ्या मति को खोकर ।
देख वीर को भव्य बने थे, भय कालिख को धोकर ॥

देख दृश्य पश्चिम भी दौड़ी, नव्य बाल ले आई ।
विधुशीतल सुन्दर भी निकला, भक्ति सफलता गाई ॥

जिनकी सच्ची शरण शांति को, देती कल्मष धोती ।
दोनों जग के सुख को देकर अविनश्वर कर देती ॥

अंधकार भी ज्योति धारकर, बना साम्य का धारी ।
तारागन विभुगुन गिनते थे धन्य देव अविकारी ॥

उपवन-पुष्पों के छल से भू, अनिमिष देख रही थी ।
आज पद्मिनी और कुमुदिनी, हिल मिल खेल रहीं थी ॥

डूबा था संसार सुधामें, चन्द्र किलोलें करता ।
आज चक्र चकवी से मिलकर, सुखकी सांसे भरता ॥

विधु-किरणों के सुधासिंधु से, ग्रीष्म सभयहो भागा ।
धन्य हुई निद्रा देवी भी, बचा न कोई जागा ॥

शीतल मंद सुगंध पवन ने, सब मे मोद भरा था ।
भक्त अभक्त थके मौंदों का, सारा खेद हरा था ॥

हरे भरे थे वृक्ष लताएं, आलिंगन-सुख पातीं ।
ऋजु बाला-सर-सरिता लहरें, तट से टकरा जातीं ॥

विधु रवि मणियाँ घृतदीपक सी, जलतीं नयन जुडातीं ।
पंचतत्व भौतिक कायाएं, भी दिखतीं हर्षातीं ॥

(५६)

महावीर भी मौन मौन थी,
पूर्ण प्रकृति की माया।
अंधकार में चलते कैसे,
तमःपार थी काया॥

-: आठवाँ सर्ग :-

आया मधुर प्रभात ज्योति की किरणें देता ।
जो करता तम नष्ट शुभ्र निधि वह पा लेता ॥

खसवन की प्रियगंध नासिका हृदय जुड़ाती ।
उषा सुंदरी उठी राग का रंग बढ़ाती ॥

बहा सुगंध समीर सुमन भी हँसते डोले ।
भृंग उठे धीमे स्वर में कलियों से बोले ॥

आमों के वंन लहरे डाली डाली डोली ।
चेतनता रग रग में व्यापी कोयल बोली ॥

भृंग-कृष्ण की बजी बाँसुरी कलियाँ डोलीं ।
रास-निमज्जित अर्ध विनिद्रित आँखें खोलीं ॥

पत्ती पत्ती ताल बजाती नाच उठी थी ।
सर-सरिता की लहर वादिनी बाज उठी थी ॥

वन गुलाब के उषा सुंदरी पर हँसते थे ।
कहीं पिये रवि-किरण चक्र दंपति नचते थे ॥

कहीं दमकते रवि-किरणों से उठे बबूले ।
लगते शुद्ध बनाये ज्यों सोने के गोले ॥

आज विपुल गिरि नहीं चार का सबका राजा ।
भरत देश में आज भाग उसका है जागा ॥

सब देवों के देव यहाँ आकर बोलेंगे ।
जग के संशय काट विश्व बंधन खोलेंगे ॥

निर्मल था आकाश विशाल वितान मनोहर ।
रवि किरणों ने ताज रखा शिखरों के ऊपर ॥
चार दिशा के कनक-कलश थे सुंदर गिरिवर ।
कुल विहंग करते शुभ मंगल गीत मधुर स्वर ॥
ओस कणों से किया गया अभिषेक निराला ।
जिनको ऊषाने सरसिज उपवन में पाला ॥
आज विपुलगिरी धन्य शैल राजा कहलाया ।
पहिन कमल-वन-हार श्रेष्ठ नरहरि बन पाया ॥
गगन-यान कर वीर शीघ्र आये विपुलाचल ।
धर्म सभा में गये उन्हीं के कटे कर्म मल ॥
नगर नगर में चली पुण्य थी उनकी चर्चा ।
इनसा कोई अन्य नहीं सुर करते आर्चा ॥
फैला पुर में समाचार सन्मति आए हैं ।
योगीश्वर अतिवीर धीर जिनवर आए हैं ॥
बाल ब्रह्मचारी मुनिवर हैं कर्म-विहंडन ।
धन्य हुआ यह देश पूज्य त्रिशला के नंदन ॥
अद्वितीय हैं ज्ञान-सूर्य हैं धर्म-धुरंदर ।
जो कहते वह वेद यही हैं सत्य युगंधर ॥
कर कर इन की धर्म परीक्षा इन्द्र थके हैं ।
हारे नर-सुर-रुद्र ध्यान के ये पक्के हैं ॥
जिस पथ से जाते नर श्रद्धानत हो जाते ।
शांतिमूर्ति को देख चरण में झट झुक जाते ॥
जिन चरणों की धूलि पाप का खंडन करती ।
कौन जीव जिस के न चित्त का नंदन करती ॥

देख वनश्री उपवन-माली अतिहर्षाया ।
छह ऋतुओं के दे फल नृप को वृत्त सुनाया ॥

तीन लोक के देव जहाँ जिस पुर आए हों ।
कौन अभागा जिसे न प्रिय आश्चर्य हुए हों ॥

आज राजगृह शोभित था उल्लास भरा था ।
प्रकृति नटी के दिव्य हास से पुर निखरा था ॥

सुधा-धवल से सभी शुभ्र आलय दिखते थे ।
सुर-मंदिर नर-निलय भव्य से ही लगते थे ॥

स्वस्तिक ध्वज फर फर उड़ती जाती मन भाती ।
"आओ आओ पुन्य कमाओ" कहती जाती ॥

जोर जोर से बजे नगाड़े टेर रहे थे ।
दरवाजों पर कलश सुतोरण शोभ रहे थे ॥

पुर भेरी बज उठी सुना जिसने वह धाया ।
जिनवर का आगमन आज सब के मन भाया ॥

बिम्बसार चेलना इन्द्र इन्द्राणी जैसे ।
सजधज सेना चली साथ सुर-सेना जैसे ॥

पथ में मंगल गीत वाद्य बजते जाते थे ।
"जय सन्मति जय वर्धमान" रव भा जाते थे ॥

नगर नगर भी गूंज प्रतिध्वनि सादर देता ।
"वीर-चरण में धोक" विनय से कह झुक लेता ॥

विपुलाचल पर जाकर सबने शीश झुकाया ।
मानव कोठे में समाज जाकर हर्षाया ॥

यहां अर्चना चली, न जब तक गणधर आया ।
जान इन्द्र ने वृध्द मनुज का रुप बनाया ॥

इन्द्रभूति गौतम बुधजन था एक निराला।
बुद्ध गया दो प्रश्न पूछने हो मतवाला ॥
"जो हारेगा वही बनेगा शिष्य परस्पर"।
यही प्रतिज्ञा की दोनों ने सौगंध लेकर ॥

कहा बृध्द ने 'कहाँ कौन छह द्रव्यें बोलो।
क्या गतियाँ, क्या लोक, अस्ति कायों को बोलो ॥

क्या व्रत हैं क्या समिति, ज्ञान का क्या स्वरुप है।
कौन तत्व हैं सात धर्म का क्या स्वरुप है ॥

लेश्याएं हैं कौन, कौन हैं अस्ति निकायें।
जो जानें समझें वे ही बुधजन कहलायें ॥

सुनकर भौंचक्का रहकर के गौतम बोला।
'रे तुझ से क्या, मैं तव गुरू से वाद करूंगा ॥

पंचशतक शिष्यों को अनुजद्वय को लेकर।
बुधजन गौतम चला वृद्ध का साथी होकर ॥

बीच बीच में गौतम मद में कभी उछलता।
किन्तु बुद्धि थी चकित इसी से कहीं उबलता ॥

ज्यों ही मानस्तंभ वीर का उसने देखा।
हुआ मान मद चूर, विनय से झट झुक बैठा ॥

कर अर्चास्तुति हुआ ज्ञान किरणों का धारी।
हों अभव्य भी भव्य, सभा की महिमा न्यारी ॥
प्रश्न अनेकों किए सहेतुक उत्तर पाया।
शिष्यों अनुजों सहित बनी अब सच्ची काया ॥
गौतम बोले–'महावीर विभु जो कहते हैं।
वही सत्य है वेद भव्य आनंद लेते हैं ॥

प्राणि पुण्य से तीर्थ करों की वाणी खिरती ।
जन्म जन्म की पाप वासना जग की कटती ॥

वीर सभा के बने प्रमुख थे गौतम गणधर ।
सर्व गम्य हितकर ध्वनि में बोले तब विभुवर ॥

सदा सत्य विश्वास ज्ञान आचरण हितंकर ।
इन बिन बोलो कौन बनेगा जन-क्षेमंकर ॥

इन बिन मानव मूढ बने कब निज हितकारी ।
इन बिन बोलो कौन बने कब पर उपकारी ॥

बिना किये विश्वास कहां कब ज्ञान जगा है ।
बिना किये विश्वास कहां कब जान मिला है ॥

अंधे बनकर नहीं किसी की बातें मानों ।
मन से पूछो नर ! निज हित की बातें जानों ॥

जो झूठे हों वे सच की क्या राह बतायें ।
जो भूले हों वे पर को क्या राह दिखायें ॥

जो दुनियां में रमे सत्य क्या कभी कहेंगे ।
जो दुनियां में जगे सत्य वे सभी कहेंगे ॥

जो दुनियाँ से दूर बने हित वाक्य कहेंगे ।
वे ही होंगे वेद धर्म के साथ रहेंगे ॥

वे ही होंगे सत्य ज्ञान आचरण मनोहर ।
वे ही हैं अज्ञान विनाशक सर्व दुःख हर ॥

जो सच्चा विश्वास लिये जग में चलता है ।
सत्य राह में कौन उसे नर ठग सकता है ॥

सच्चा विश्वासी जग में निर्भय रहता है ।
जो सच्चा लगता उसको ही वह कहता है ॥

कभी न उसके चित्त जागती हैं शंकाएं ।
कभी न जगती स्वार्थ भावना अभिलाषाएं ॥

कभी न सच्चे साधु संत से ग्लानि उपजती ।
बुरी राह में कभी न उसकी मति भी जगती ॥

पर के पापों पर वह ध्यान नहीं देता है ।
डिगता हो तो उसे सत्य पर दृढ रखता है ॥

सदा विश्व का प्रेम हृदय में लहराता है ।
सदा सत्य के ही प्रचार में रम जाता है ॥

कभी न खिलता मान भाव उसके मानस में ।
सदा किरण का दान किया करता तामस में ॥

रखता है विश्वास जीव यह अजर अमर है ।
कर्म जन्य फल मिलें हमें किसका क्या डर है ॥

व्यसनों से तुम बचो दूर निज को पहिचानो ।
देह स्वस्थता को इस जग में हितकर जानो ॥

पंच पाप से बचो सदा जो सुखकर बचना ।
बने विरागी संत पंथ पर सीधे चलना ॥

सत्कर्मों से मानव जीवन उज्ज्वल होता ।
युग युग के कुल के कलंक को भी धो देता ॥

उच्च नीच नर स्वीय आचरण से बनता है ।
पापों को पूर्वज-कुल-जीवन कब ढकता है ॥

सत्य बात भी कहो, न मन में क्रोध जगाओ ।
क्षमापुत्र हो सहन शीतला को अपनाओ ॥

करे क्रोध जो उसे क्षमा के घन बन जाओ ।
ग्रीष्म ताप में पूनम का आनंद उठाओ ॥

कहाँ मान ने मानव मन का मान रखा है।
कहां मान का मान यहां नर ने देखा है॥

सत्य मान है स्वाभिमान जिस पर नर चल कर।
पाता है सन्मान विश्व में निर्भय मर कर॥

नव अंकुर के तुल्य नम्र को फलते में देखा।
धन-यौवन-कुल–मान सभी को निष्फल देखा॥

विनय–वंत ही सदा ज्ञान की ज्योति जगाते।
रावण जैसा मान सदा वे दूर भगाते॥

भूल करो मत कपट सरल परिणाम रखो तुम।
जो कह दो उस को करना भी सीखो नर तुम॥

झूठे का विश्वास न कोई जग में करता।
संग बुरे का सदा सज्जनों को अतिखलता॥

पर निन्दा से बचो सदा यह दुःख जगाती।
आपस में मत भेद फूट को यही उगाती॥

इसका है परिणाम बैर तुम इस से बचना।
नीले नभ को किया श्वेत कब तम ने कहना॥

संतोषामृत पान करो तृष्णा को त्यागो।
बन सतृष्ण नर सज्जन पथ से कभी न भागो॥

न्याय नीति से प्राप्त द्रव्य को शस्य कहा है।
आशा के मत बनो दास यह भला कहा है॥

जो रखता संतोष वही मन का मटा है।
जो तजता संतोष वही मन का छोटा है॥

सब आशाएं यहाँ कहाँ कब पूरी होतीं।
बिना धर्म के सभी क्रियाएँ झूठी होतीं॥

करो सदा उपकार धर्म का यह ही कहना।
इस पथ पर चल जीवन होता निर्मल सोना॥

धन का लोभी साथ न धन को ले जाता है।
अंत समय में हाय हाय कर रह जाता है॥

जीवन का है मूल्य इसी में मानो मानव।
इस से उल्टा सदा समझता केवल दानव॥

निर्झर करते गान इसी से बढ़ते जाते।
दे पयोद जलदान प्राण अपने बिखराते॥

नहीं किसी के प्राण दुःखाओ संयम पालो।
इन्द्रिय घोड़ों को अपने वश में कर डालो॥

सभी मनोरथ पूर्ण इसी से हो सकते हैं।
नर जीवन के प्राण सफल भी हो सकते है॥

यथा शक्ति तप तपो करो जीवन को उज्ज्वल।
जिस से जग में मानव फैले सुन्दर परिमल॥

मानवता की शिखर इसी से होती पावन।
कनक कलश से जो करती जग का आह्वानन॥

चारसंघ का सदा ध्यान में जीवन रखना।
स्वास्थ दान दे सदा उसे निर्भय भी रखना॥

हो विकसित सन्मति इस में तुम भूल न करना।
प्राणो का आने पर अवसर मोह न धरना॥

रखो वस्तुएं मानव जितनी हों आवश्यक।
क्यों संग्रह कर भूल हंत ! करते हो पातक॥

पर हित करदो भूमिदान धन वस्तुदान भी।
पर विवेक का मानव रखना पूर्ण ध्यान भी॥

सब उन्नति का मूल ब्रह्मचारी का जीवन।
बनो ब्रह्मत्र के सदा उपासक दे तन मन धन॥

निज नारी को छोड़ शेष माँ बहिनें समझो।
रूपवतीं हों या कुरुप लज्जालंकृति हो॥

लज्जा से मानव मन की उज्ज्वलता बढ़ती।
शील निखरता बुद्धि महा उज्ज्वल है बनती॥

गंदी बातों में न समय को काटो मानव।
करो समय उपयोग बढ़ाओ जीवन वैभव॥

बनो विचारों में उदार यह भूल न करना।
अनेकांत से निज विचार को उन्नत करना॥

मिथ्या ही श्रद्धान विश्व में दुख देता है।
यह काला है नाग युगों तक जो डसता है॥

बनो अहिंसक हिंसन देती दुख बहुतेरे।
मैं मारुँगा यह विचार हों कभी न तेरे॥

पूर्ण अहिंसक मानव! यतिवर ही कहलाते।
पूर्ण धर्म के पालक ही मुनिवर कहलाते॥

निज बचाव के लिए सभी कुछ कर सकते हो।
पर विवेक के बिना नहीं तुम तर सकते हो॥

दीन दुखी जीवों पर करुणाभाव रखो तुम।
जैनधर्म को धार विश्व उपकार करो तुम॥

जैनधर्म की सकल क्रियाएँ उत्तम मानो।
जैन धर्म हितकार विश्व में मानव जानो॥

इस को धारकर मानव जीवन सफल बनाओ।
जो करना हो करो अंत में क्यों पछताओ॥

मन को जीतो मानस के राजा बन जाओ।
योग-श्रेणि से बढ़ो बढ़ो भव से तर जाओ॥

पाओगे वह ज्ञान तीर्थंकर जो पाते हैं।
किये विश्व-उपकार धर्म में रम जाते हैं॥

फैल रहा साम्राज्यवाद जग तड़प रहा है।
अवसर मिलते दीन हीन कों हड़प रहा है॥

धर्म नाम पर हिंसन का जो मार्ग चला है।
सचमुच उसने धर्म-मर्म कों ही कुचला है॥

फैल रहा जो भूतवाद उस को भी रोको।
निज संस्कृति को धार रोग का चोला फेंको॥

देख समय को ही समाज कर्तव्य बनाओ।
जब तक जैसे बने धर्म का चक्र चलाओ॥

सच समाज के नियम बदलते ही रहते हैं।
धर्म पंथ पर" इसे संत निर्भय कहते हैं॥

सब को दो वह ज्ञान सत्य की राह चले सब।
सब को दो वह ज्ञान धर्म की शरण गहें सब॥

हो समाज की नींव अहिंसा जग हित कारी।
बने विश्व सुखधाम मित्रता की हो क्यारी॥

सभी तरह के युद्ध भौतिकी संहारक हैं।
विश्व शांति में हिंसा के ही रव बाधक हैं॥

तब कल्याण करी भौतिक उन्नति होती हैं।
जब सरिता अध्यात्म्य हृदय का मल धोती है॥

उसकी लय-ध्वनि व्याप रही है सारे जग में।
सुनकर पाओ परम सौख्य निष्कंटक मग में॥

सती चंदना इसी समय होती हैं दीक्षित।
श्वेत वस्त्र को धार सरस्वति सी परिलक्षित॥

मुख्य अर्जिका बनीं अर्जिका के समाज की।
हर्ष उच्चगति बनी आज नारी समाज की॥

बिम्बसार थे बहुत चकित उत्तर को सुन सुन।
"जो चाहूँ मैं" वही वीर कह देते तत्क्षण॥

धन्य वीर सर्वज्ञ हितंकर तीर्थ कर हैं।
धर्म तीर्थ को बना बने जो पावन तर हैं॥

धन्य आज मैं जैन धर्म का पालन कर्ता।
जैन धर्म है धन्य विश्व के जो दुख हर्ता॥

मेरे मन में सत्य ज्ञान की ज्योति जगी है।
जगा तत्व श्रद्धान जिनों में भक्ति लगी है॥

धन्य देव अर्हंत चार कर्मों के नाशक।
धर्म देशना देकर जो बनते हैं तारक॥

वेही बनते सिद्ध कर्म जो शेष बचे हैं।
उनको करते नाश, जन्म से मुक्त हुए हैं॥

धन्य धन्य आचार्य संघ के जो संरक्षक।
उपाध्याय भी धन्य हुए बनते तमभक्षक॥

देते हैं जो ज्ञान संघ को अति सुख कारी।
मूल गुणों के धारक मुनि भी जग हितकारी॥

सच्चे श्रावक बनो बनो नैष्ठिक व्रत धारी।
बनो अन्त में सार्थक मुनि यह शिक्षा सारी॥

धन्य आज मैं हुआ वीर-उपदेश सुनाजो।
जीवन होता धन्य तीर्थ--कर में पगता जो॥

सभा विसर्जित हुई भव्य आनंदित होते ।
लौटे ले श्रद्धान परस्पर शंसा करते ॥

सप्तधार और ब्रह्मकुण्ड के पावन निर्झर ।
याद - दिलाते ब्रह्म सप्त-भंगी पर निर्भर ॥

हुआ वीर आदेश धीर गौतम गणधरने ।
दस गणधर चुन लिए अंग ग्रंथों को रचने ॥

संघ बना कर सत्य अहिंसा को फैलाने ।
गुरूतर सौंपा कार्य वीर ने विश्व जगाने ॥

महावीर से हुआ प्रभावित कौन न मानव ।
महावीर से हुआ प्रभावित कौन न दानव ॥

महावीर से हुए प्रभावित सभी धर्म थे ।
मध्यम पथ को धार बुद्ध भी तो दीक्षित थे ॥

देश-देश में महावीर ने ज्ञान जगाया ।
पावापुर में अन्त समय में ध्यान लगाया ॥

कार्तिक कृष्ण अमा रजनी के अंत प्रहर में ।
मुक्ति लाभ कर लिया विश्व हित प्राण दान में ॥

हुई परीक्षा पूर्ण मुक्ति कन्या भी चहकी ।
जैन धर्म की सौरभ भी दश दिशि में महकी ॥

मुक्ति रमा का पति बन जाना सरल नहीं है ।
पर हित जलना जीवन भर भी खेल नहीं है ॥

हुआ दिव्य आलोक विश्व तम-तोम भगा था ।
घनी रात के बाद ऊषा को मान मिला था ॥

स्वर्ग धरा ने "हीरक" मणिमय दीप जलाए ।
"दीप मालिका" उत्सव ने प्रभु के गुण गाए ॥

सिंह चिह्निता सन्मति की प्रतिमा मनभावन।
जैन धर्म भी धन्य विश्व को करता पावन॥

अन्तरिक्ष में यह निनाद-घन छा गा सुखकर।
"जय सन्मति, जय वर्ध्दमान" जय जिन तीर्थंकर॥

॥ समाप्त ॥